अल-रिसाला
सितम्बर-अक्तूबर 2025

अल-रिसाला
सितम्बर-अक्तूबर 2025

CPS International
centre for peace and spirituality

माहनामा ‘अल-रिसाला’ को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी
आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
फ़रहाद अहमद ,इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

दिबाचा	4
वतन से मोहब्बत एक फ़ितरी हक़ीक़त	8
रसूलुल्लाह की वतन से मोहब्बत	9
नेशनलिज़्म और वतन से मोहब्बत	10
वतन से मोहब्बत	13
मुसलमानों की क़ौमियत	20
एक ग़ैर-हक़ीक़ी सोच	21
क़ौमियत की बुनियाद वतन	22
क़ौम और क़ौमियत	23
क़ौमियत का मसला	28
हिंदुस्तानी क़ौमियत	33
मादर-ए-वतन कहना	40
कम्यूनल हार्मनी	42
वतन से मोहब्बत और क़ौमी एकता	43
गुड इंडियन	44
वतन से सच्ची मुहब्बत	46
अहसास-ए-वतनियत	47
अमीर भारत, ग़रीब अमरीका	48
यह इस्लाम नहीं	49

एक मिसाल	50
बरादरान-ए-वतन के साथ हुस्न-ए-सुलूक	51
नेशनल कैरेक्टर	52
सच्ची देश-भक्ति	53
क़ौमी शऊर और वतन की तामीर	54
इत्तेहाद और कुर्बानी	55
एक सीनियर सिटिज़न की ज़बानी	56
सवाल व जवाब	61
इनकार और झुठलाना	64
मिठास का इज़ाफ़ा	65

दिबाचा

वतन से मोहब्बत एक गहरा इंसानी जज़्बा है—ऐसा जज़्बा जो समाज, तहज़ीब और जुग़राफ़िये की सरहदों से ऊपर है। यह उस क़ुदरती रिश्ते की झलकाता है जो इंसान और उस सरज़मीन के दरमियान क़ायम होता है जहाँ वह पैदा होता है, परवरिश पाता है, और जहाँ उसकी शख़्सियत की तामीर होती है। अपनाइयत का यह तअल्लुक़ सिर्फ़ ज़मीन से नहीं होता, बल्कि उस ज़मीन की यादों, ज़बान, रवायात और इज्तिमाई तजुर्बे से जुड़ा होता है। वतन से मोहब्बत सिर्फ एक जज़्बाती रिश्ता नहीं है, बल्कि यह एक ज़िम्मेदार शहरी और अच्छे इंसान होने की निशानी भी है।

सदियों से इंसान ने अपनी शनाख़्त, ताक़त और तअल्लुक़ का सरचश्मा अपनी जाए-पैदाइश से हासिल किया है। वतन से मोहब्बत का मतलब है उसकी बेहतरी और खुशहाली का ख़याल रखना, उसके अम्न-ओ-तरक़्क़ी की ख़्वाहिश रखना, और उसके मुस्तक़बिल की तामीर में अहम किरदार अदा करना। इस मोहब्बत में अलग-अलग लोगों और उनकी पहचान का एहतराम करना, माहौल की हिफ़ाज़त करना, और इंसाफ़ व आपसी मेल-मिलाप के लिए कोशिश करना शामिल है। वतन से मोहब्बत एक फ़ितरी जज़्बा ही नहीं, बल्कि मुख़्तलिफ़ फ़लसफ़ियाना और मज़हबी रवायतों को समर्थन भी मिलता है। मुस्लिम उलमा, फ़ुक़हा और सूफ़िया ने इसको भी जायज़ फ़ितरी जज़्बे के तौर पर तस्लीम किया है। मिसाल के तौर पर मा'रूफ़ फ़क़ीह मुल्ला अली अल-क़ारी (व०1606) ने लिखा है:

إِنَّ حُبَّ الْوَطَنِ لَا يُنَافِي الْإِيْمَانَ

"वतन से मोहब्बत ईमान के ख़िलाफ़ नहीं।"

(अल-असरार अल-मरफ़ूआ, P.181)

सहीह अल-बुख़ारी के शारिह इब्न बत्ताल (व०449) लिखते हैं:

> “अल्लाह तआला ने इंसान की फ़ितरत में वतन से मोहब्बत और उसकी चाहत रख दी है—और नबी सल्लल्लाहु अलैहिवसल्लम ने ऐसा किया और आपका अमल इस मामले में बेहतरीन नमूना है।” (शरह सहीह अल-बुख़ारी, V4, P.453)

यह बात दुरुस्त है कि क़ुरआन-ओ-हदीस से बराह-ए-रास्त तौर पर ऐसा कोई हुक्म नहीं मिलता कि वतन से मोहब्बत करनी चाहिए, लेकिन बिल-वास्ता तौर पर कई हुक्म साबित हैं, जो वतन से मोहब्बत की अहमियत को ज़ाहिर करते हैं। इमाम ज़हबी ने अपनी किताब में उन चीज़ों की फ़ेहरिस्त दी है, जिनसे रसूलुल्लाह ﷺ मोहब्बत करते थे। इनमें से एक यह भी है कि आप अपने वतन से मोहब्बत करते थे:

وَيُحِبُّ وَطَنَهُ

(सियर आलाम अल-नुबला, V15, P.394)।

हदीस की किताबों में एक मस्नून दुआ इन अल्फ़ाज़ में आई है:

اَللّٰهُمَّ حَبِّبْ إِلَيْنَا الْمَدِيْنَةَ كَحُبِّنَا مَكَّةَ أَوْ أَشَدَّ

> “ऐ अल्लाह! हमें मदीना से उसी तरह मोहब्बत दे जैसे तूने हमें मक्का से मोहब्बत दी है।” (सहीह बुख़ारी: 1889)

इस हदीस में गोया इस बात का इशारा है कि हर इंसान को अपनी पैदाइश की जगह और अमल की जगह से मोहब्बत की दुआ करनी चाहिए। इसी तरह हदीस की किताबों में आता है कि जब आप सफ़र से वापस आते, और मदीना की दीवारों को देखते तो मदीना से मोहब्बत की वजह से अपनी सवारी तेज़ फ़रमा देते। (सहीह बुख़ारी: 1886)

सिर्फ़ वतन से नहीं, बल्कि वतन से तअल्लुक़ रखने वाली चीज़ों से भी मोहब्बत होनी चाहिए। मिसाल के तौर पर उहुद का पहाड़

मदीना के लिए कुदरती ढाल का काम करता था। आप ने उहुद पहाड़ के लिए फ़रमाया:

هٰذَا جَبَلٌ يُحِبُّنَا وَنُحِبُّهُ

"यह पहाड़ हमसे मोहब्बत करता है और हम इससे मोहब्बत करते हैं।" (सहीह अल-बुख़ारी: 2889)

रसूलुल्लाह ﷺ की ये अहादीस वतन से जुड़े गहरे जज़्बात और अख़्लाक़ी अक़्दार को नुमायाँ करती हैं। हदीस की व्याख्या (explanation) करने वालों ने भी इनकी अहमियत पर ज़ोर दिया है और वाज़ेह किया है कि ये अहादीस वतन से मोहब्बत और तअल्लुक़ को जायज़ क़रार देने की दलील हैं। (उम्दतुल क़ारी लिलऐनी, V10, P.135; फ़त्हुल बारी लिइब्न हजर, V3, P.621) बर्र-ए-सगीर (Indian subcontinent) के मा'रूफ़ मुहद्दिस और फ़क़ीह मौलाना ज़करिया क़ांधलवी (1898–1982) ने इसको मज़ीद वाज़ेह किया है कि ''इसी तरह का हुक्म मदीना के सिवा उन तमाम शहरों, इलाक़ों और वतनों के बारे में भी है जिनकी तरफ़ झुकाव हो और जो महबूब हों।"

كَذٰلِكَ الْحُكْمُ فِي غَيْرِ الْمَدِينَةِ مِنَ الدِّيَارِ
الْمَرْغُوبَةِ فِيهَا، وَالْأَوْطَانِ الْمَحَبَّبَةِ فِيهَا
(अल-लामिअ अद-दरारी, V5, P.279)

इस्लामी तारीख़ का मुताला बताता है कि ऐसा नहीं है कि यह सिलसिला रसूलुल्लाह ﷺ के बाद ख़त्म हो गया, बल्कि बाद में आने वाले बहुत से उलमा, सूफ़िया और शायरों की तहरीरों में भी इसी जज़्बे का अहसास साफ़ दिखाई देता है। है। मसलन, इस्लामी तारीख़ के मशहूर ज़ाहिद और सूफ़ी बुज़ुर्ग इब्राहीम बिन अदहम (व०160 हि०) से मनक़ूल है:

مَا قَاسَيْتُ فِيمَا تَرَكْتُ شَيْئًا أَشَدَّ عَلَيَّ مِنْ مُفَارَقَةِ الْأَوْطَانِ

“मैंने जिन चीज़ों को छोड़ा, उनमें से किसी चीज़ की तकलीफ़ मुझ पर इतनी शदीद न थी जितनी वतन की जुदाई।”

(हिल्यतुल औलिया, V7, P.380)

अल्लामा राग़िब इस्फ़हानी पाँचवीं सदी हिजरी (11ई०) के मशहूर मुस्लिम आलिम, मुफस्सिर और अरबी ज़बान के माहिर थे। उन्होंने अपनी किताब महाज़रातुल अदबा (V2, P.652) में वतन की मोहब्बत के मौज़ू पर दो मुस्तक़िल चैप्टर्स क़ायम किए हैं। इस किताब में वतन से मोहब्बत के तअल्लुक़ से एक बामानी क़ौल यह है:

حُبُّ الْوَطَنِ مِنْ طِيْبِ الْمَوْلِدِ

वतन की मोहब्बत नेक फ़ितरत इंसान की सिफ़त होती है।

इसी तरह एक और क़ौल यह है:

لَوْلَا حُبُّ الْوَطَنِ لَخَرَبَتْ بِلَادُ السُّوءِ

“अगर वतन से मोहब्बत का जज़्बा न होता तो वह जगहें वीरान हो जाते, जहाँ ज़ुल्म व बदइंतिज़ामी पाई जाती है।”

इस्लामी किताबों में बहुत-सी दलीलें मिलती हैं जो इस हक़ीक़त को बहुत साफ़ तौर पर बयान करती हैं कि वतन से मोहब्बत इंसान की फ़ितरत का हिस्सा है। यह ईमान के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि अच्छे अख़लाक़ और इस्लामी क़दरों के बिल्कुल मुताबिक़ है। ये बातें साफ़ बताती हैं कि अपने वतन से मोहब्बत करना न तो तंगदिली है और न ही पक्षपात। बल्कि यह इंसान के अच्छे अख़लाक़ और उसकी फ़ितरत का एक ज़रूरी हिस्सा है। यह अख़लाक़ के ख़िलाफ़ बात होगी कि वह सरज़मीन जो आपको सब कुछ दिया हो, आपको उससे कोई लगाव या तअल्लुक़ न हो।

वतन से सच्ची मोहब्बत एक जोड़ने वाली क़ुव्वत होती है, फूट

डालने वाली नहीं। यह दीन के ख़िलाफ़ नहीं, बल्कि उसे मज़बूत करने का ज़रिया है। यह किताब, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की तहरीरों से तैयार की गयी है। इन सफ़हात में क़ारी को वतन से मोहब्बत का एक नया पहलू देखने को मिलेगा। यानी यह कि इख़लास, अच्छे अख़लाक़, मुसबत सोच और अच्छे तामीरी कामों के साथ अपने वतन से मोहब्बत , एक बेहतर दुनिया को बनाने का असरदार ज़रिया है। अल्लाह तआला से दुआ है कि वह इस किताब को कामयाबी अता फ़रमाए, और मुसन्निफ़ के लिए सदक़ा जारीया बनाए, आमीन।

डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम, नई दिल्ली
जुलाई 2025

वतन से मोहब्बत एक फ़ितरी हक़ीक़त

हज़रत उमर फ़ारूक़ ने एक बार फ़रमाया कि अल्लाह ने मुल्कों को वतन की मोहब्बत के ज़रिये आबाद कर रखा है:

عَمَّرَ اللهُ البُلْدَانَ بِحُبِّ الْأَوْطَانِ

(अत-तज़किरा लिइब्न हम्दून अल-बग़दादी, असर नंबर 407)

इस क़ौल में एक फ़ितरी हक़ीक़त को बताया गया है। यह इंसान की फ़ितरत में शामिल है कि उसको अपने वतन से मोहब्बत हो। इसी मोहब्बत के ज़ोर पर बस्तियाँ और शहर आबाद होते हैं। अब अगर इस हक़ीक़त को सामने रखा जाए कि यह फ़ितरत ख़ुदा की पैदा की हुई है, तो हुब्ब-उल-वतन भी एक ईमानी सिफ़त नज़र आएगी, क्योंकि ईमान फ़ितरत-ए-इंसानी ही का एक मज़हर है।

حُبُّ الْوَطَنِ مِنَ الْإِيمَانِ

"वतन से मोहब्बत ईमान का जुज़ है।"

अगरचे हदीस-ए-रसूल नहीं, मगर मैं समझता हूँ कि इसमें जो बात कही गई है, वह ब-ज़ात-ए-ख़ुद एक दुरुस्त बात है।

(डायरी, 29 फ़रवरी 1996)

रसूलुल्लाह की वतन से मोहब्बत

रसूलुल्लाह ﷺ जब मजबूर होकर मक्का से हिजरत करके मदीना जाने लगे, तो उस वक़्त आपने मक्का की तरफ़ देखकर फ़रमाया:

وَاللهِ إِنَّكِ لَخَيْرُ أَرْضِ اللهِ، وَأَحَبُّ أَرْضِ اللهِ
إِلَيَّ، وَاللهِ لَوْلَا أَنِّي أُخْرِجْتُ مِنْكِ، مَا خَرَجْتُ

(सुनन इब्न माजा: 3108)

"ऐ मक्का, तू मुझे दुनिया भर में सब से ज़्यादा अज़ीज़ है। मगर तेरे बाशिंदे मुझे यहाँ रहने नहीं देते।"

बाद को जब मक्का फ़तह हुआ, तो आपके लिए पूरा मौक़ा था कि आप मक्का को दोबारा अपनी क़ियामगाह बना लें। मगर आप मदीना वापस चले गए और आख़िर उम्र तक वहीं रहे। यहाँ तक कि आपकी वफ़ात के बाद मदीना ही में आपकी क़ब्र बनाई गई।

इससे मालूम हुआ कि मक्का के बारे में आपका मज़कूरा जुमला शरई नौइयत का जुमला न था। अगर इसकी हैसियत शरई होती, तो यक़ीनन आप फ़तह के बाद मक्का में रह जाते। मगर मक्का पर क़ब्ज़े

के बावजूद आपका मदीना चले जाना साबित करता है कि यह जुमला शरई न था, बल्कि वह वतनी मोहब्बत के जज़्बे के तहत निकला हुआ एक जुमला था। (डायरी, 12 नवंबर 1996)

आम तौर पर समझा जाता है कि आपका यह इर्शाद इसलिए था कि मक्का एक मुक़द्दस शहर है, मगर मैं समझता हूँ कि आपका यह इर्शाद वतन के जज़्बे के तहत था। यह उसी जज़्बे का इज़हार था जो हर इंसान के अंदर अपने वतन को छोड़ते वक़्त पैदा होता है। बाद के ज़माने में मुसलमानों में नअत-गोई का रिवाज हुआ। इन नअतों में हमेशा मदीना की अज़मत बयान की जाती है। मैंने कभी नहीं देखा कि इन नअतों में मक्का की अज़मत बयान की जाती हो। अगर मक्का मुतलक़ तौर पर मुक़द्दस शहर हो, तो इन नअतों में मक्का की तारीफ़ होनी चाहिए थी, न कि मदीना की। (डायरी, 14 सितंबर 2006)

नेशनलिज़्म और वतन से मोहब्बत

1971 के शुरुआती दौर की बात है। मैंने ट्रेन से पाकिस्तान—लाहौर और फ़ैसलाबाद— का सफ़र किया। जब मैं हिंदुस्तानी सरहद पार करके दूसरी जानिब पहुँचा, तो मेरे क़ुली ने एक फ़ौजी अफ़सर की तरफ़ इशारा करते हुए कहा कि वह मेजर साहब आपको बुला रहे हैं। इसके बाद क़ुली ने मुझे एक बंद फ़ौजी ख़ेमे के अंदर पहुँचा दिया। वहाँ एक पाकिस्तानी फ़ौजी अफ़सर बैठा हुआ था। इस ख़ेमे में सिर्फ़ हम दो आदमी थे। यह उस वक़्त की बात है जब कि बांग्लादेश की जंग की तैयारियाँ हो रही थीं। इस मसले की वजह से इंडिया और पाकिस्तान में सख़्त तनाव पैदा हो गया था।

इस ख़ेमे में पाकिस्तानी फ़ौज के अफ़सर ने मुझसे ऐसी गुफ़्तगू शुरू की जो मेरे नज़दीक इंडिया के नेशनल इंटरेस्ट के ख़िलाफ़ थी। मिसाल के तौर पर बावर्दी फ़ौजी अफ़सर ने मुझसे कहा कि इंडिया के कुछ फ़ौजी राज़ बताइए। कुछ देर तक मैं बर्दाश्त करते हुए उसकी बातें सुनता रहा। फिर मैंने कहा, मेजर साहब, आप मुझसे यह समझ कर बात कीजिए कि मैं इंडिया का एक वफ़ादार शहरी हूँ। इसके बाद मैंने तक़रीबन पंद्रह मिनट तक निहायत सख़्त अंदाज़ में उसके सामने तक़रीर की। मैं जानता था कि उस वक़्त अगर वह मुझे गोली मार दे, तो यहाँ मुझे कोई बचाने वाला न होगा। मगर सूरत-ए-हाल की नज़ाकत की परवा किए बग़ैर मैंने उससे वह सब कुछ कह डाला जो एक हिंदुस्तानी शहरी की हैसियत से मैं कह सकता था।

मज़कूरा फ़ौजी मेजर से जो बातें मैंने कहीं, उनमें से एक बात यह थी कि अगर इंडिया के साथ आपकी लड़ाई का दारोमदार हमारे जैसे लोगों से फ़ौजी राज़ हासिल करने पर है, तो आप अपनी लड़ाई पहले ही जीत चुके हैं। क्योंकि मौजूदा ज़माने में जंगी राज़ इतना टॉप-सीक्रेट होता है कि बअज़ औक़ात डिफ़ेन्स मिनिस्टर को भी उसकी ख़बर नहीं होती। तक़रीबन आधा घंटा तक मैं इस क़िस्म की बातें करता रहा। इसके बाद सलाम और माफ़ी किए बग़ैर ख़ेमे से बाहर निकल आया। मज़कूरा मेजर मुकम्मल ख़ामोशी के साथ मेरी बातों को सुनता रहा। जब मैं बाहर निकला, तो वह भी मेरे पीछे-पीछे बाहर आ गया। उसने कहा —मौलाना साहब, हमको आप ही के जैसे लोगों की ज़रूरत है।

यह बात मैंने पाकिस्तान की सरज़मीन पर एक फ़ौजी ख़ेमे में उस वक़्त कही, जब कि अगर वह फ़ौजी अफ़सर मुझे गोली मार देता, तो शायद मेरी मौत इस तरह वाक़े होती कि उसकी कोई ख़बर भी न बनती।

जिस वक़्त मैंने पाकिस्तान के फ़ौजी अफ़सर से यह बातें कहीं, उस वक़्त मेरा मज़हब, मेरा लिबास, मेरी बोली, मेरी ख़ानदानी रवायात—

सब कुछ एक आम हिंदू से मुख़्तलिफ़ थीं। मगर क़ौमी एहसास के एतबार से उस वक़्त मेरा एहसास ऐन वही था जो एक देशभक्त हिंदू का एहसास हो सकता है।

मेरी ज़िंदगी के सैकड़ों वाक़िआत में से यह सिर्फ़ चंद वाक़िआत हैं, जो बताते हैं कि मुझे अपने वतन से कितना ज़्यादा लगाव है। जो हिंदू मुझे क़रीब से जानते हैं, मिसाल के तौर पर स्वामी ओम (नई दिल्ली) या स्वामी चिदानंद (ऋषिकेश) वग़ैरह, वह कहते हैं कि आपके अंदर जो देशभक्ति है, उसकी मिसाल हमने महात्मा गांधी के बाद किसी और के अंदर नहीं देखी। मेरे दिल की यही तड़प है जो मुझको मज़कूरा क़िस्म की बातें कहने पर मजबूर करती है।

इस नौइयत का एक और वाक़िआ यह है कि 20 जनवरी 1997 को नई दिल्ली में पाइनियर हाउस में एक मीटिंग हुई। इसमें शहर के आला तालीमयाफ़्ता लोग शरीक थे। इस मीटिंग का मौज़ू था—क्या गांधी आज के हिंदुस्तान में कामयाब होते। मैंने इस मौक़े पर एक लंबी तक़रीर की। इस सिलसिले में मैंने कहा कि गांधी पिछले इंडिया में भी कामयाब नहीं हुए, यहाँ तक कि 1947 में उन्हें ख़ुद यह कहना पड़ा कि अब मेरी कौन सुनेगा। फिर गांधी जब पिछले इंडिया में कामयाब नहीं हुए, तो आज के इंडिया में वह किस तरह कामयाब होते। एक हिंदू प्रोफ़ेसर ने मेरी बात सुन कर किसी क़दर बेरहमी (गुस्सा) के साथ कहा कि आप महात्मा गांधी पर तनक़ीद कर रहे हैं। यह सुन कर मेरा दिल तड़प उठा। मेरी आँखों में आँसू आ गए। मैंने दर्द भरे लहजे में कहा:

I love Gandhi, but I love India more than Gandhi

मेरी यह बात सुन कर प्रोफ़ेसर साहब ख़ामोश हो गए। इसके बाद किसी ने भी मेरी तनक़ीदी तक़रीर के बारे में कुछ नहीं कहा। मेरी यह तक़रीर मुकम्मल तौर पर इंग्लिश अख़बार द पायनियर (नई दिल्ली) के शुमारा 26 जनवरी 1997 में छप चुकी है।

मेरी कुछ तनक़ीदों को सुन कर एक तालीमयाफ़्ता हिंदू ने कहा कि आप हमारे क़ौमी लीडरों की इतनी सख़्त आलोचना करते हैं। आख़िर किसने आपको इसका अधिकार दिया है। मैंने जवाब दिया कि मेरी वतन से मोहब्बत से मुझको यह इख़्तियार हासिल हुआ है। यह सुन कर वह चुप हो गए। (हिंद-पाक डायरी, P.30-32)

वतन से मोहब्बत

28 मार्च 1998 को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (नई दिल्ली) में एक सेमिनार था। इसका इंतज़ाम उर्दू अकादमी की तरफ़ से किया गया था। इसका मौज़ू मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की शख़्सियत और कारनामों का जायज़ा था। इस मौक़े पर मैंने भी एक तक़रीर की। मैंने जो बातें कहीं, उनमें से एक वतन से मोहब्बत का मसला था।

मैंने कहा कि 20 वीं सदी में लंबी मुद्दत तक मुस्लिम थिंकर्स किसी न किसी तौर पर उस नज़रिया से मुतअस्सिर रहे हैं, जिसको आम तौर पर पैन इस्लामिज़्म (Pan-Islamism) कहा जाता है। इसमें नए दौर के बहुत से थिंकर्स के नाम शामिल हैं। मसलन, सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी (1838-1897), मुहम्मद इक़बाल (1877-1938), मुहम्मद अली जिन्ना (1876-1948), सैयद अबुल आला मौदूदी (1903-1979), वग़ैरह। यह लोग मुसलमानों को एक बैन-अक़वामी बिरादरी (international community) समझते थे, और मुसलमानों को एक आलमी क़ौमियत का हिस्सा बताते थे। अपने इस नज़रिया की बुनियाद पर इनका कहना था कि क़ौमियत (nationhood) की बुनियाद मज़हब पर है, न कि वतन पर।

मैंने कहा कि मेरी उम्र हिजरी कैलेंडर के लिहाज़ से 78 साल हो रही है। मैंने अपनी उम्र का बेशतर हिस्सा इस्लाम और इस्लाम से मुताल्लिक़ उलूम के मुतालआ में गुज़ारा है। मैं पूरे एतमाद से कह सकता हूँ कि क़ौमियत को मज़हब पर मब्नी क़रार देना कोई इस्लामी नज़रिया नहीं। यह सरासर एक सियासी नज़रिया है जो मख़्सूस हालात में पैदा हुआ। 20वीं सदी के शुरू में मुसलमानों के सियासी लीडर यूरोप की इस्तिमारी (colonial) हुकूमतों के ख़िलाफ़ तमाम दुनिया के मुसलमानों को उभारना चाहते थे। अपने इस सियासी मक़सद के नज़रीयाती जवाज़ के लिए उन्होंने आलमी क़ौमियत का यह नज़रिया पेश किया। यह इस्लाम का सियासी इस्तेमाल था, न कि इस्लाम की सही नुमाइंदगी। इस मामले में इस्लाम का नज़रिया वही है, जो पॉलिटिकल साइंस का नज़रिया है, और जिस नज़रिया को पूरी दुनिया ने अमली तौर पर क़बूल कर लिया गया है। वह यह कि क़ौमियत (nationhood) की बुनियाद वतन (motherland) पर है। यही वजह है कि तमाम दुनिया में पासपोर्ट पर किसी आदमी की क़ौमियत (nationality) वही लिखी जाती है, जो वतन की निस्बत से उसकी है, चाहे वह एक मज़हब से ताल्लुक़ रखने वाला हो, या दूसरे मज़हब से। मसलन, इंडिया में हर मुसलमान या ग़ैर-मुसलमान पासपोर्ट में अपने आपको इंडियन लिखता है, ब्रिटानिया में ब्रिटिश, अमेरिका में अमेरिकन, वग़ैरह।

मब्नी बर-वतन क़ौमियत का यह नज़रिया इस्लाम के ऐन मुताबिक़ है। इस मामले में इस्लाम और बाक़ी दुनिया में कोई इख़्तिलाफ़ या टकराव नहीं। मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी ने कहा था कि मौजूदा ज़माने में क़ौमें अपने वतन से बनती हैं। इस पर कुछ लोगों ने यह इज़ाफ़ा करने की कोशिश की है कि मौलाना मदनी का यह जुमला सिर्फ़ ख़बर है, वह ख़ुदा की मंशा नहीं है। उनके केहने का मतलब यह है कि बाक़ी दुनिया में वतन को क़ौमियत की बुनियाद मान लिया गया है मगर

इसका यह मतलब नहीं कि इस्लाम में भी क़ौमियत की बुनियाद वतन पर क़ायम है। मेरे मुताबिक़ यह तशरीह दुरुस्त नहीं। इस सिलसिले में यहाँ मैं चंद बातें अर्ज़ करूँगा।

इस्लामी फ़िक़्ह का एक मशहूर उसूल है कि दुनिया की चीज़ें असल में जायज़ होती हैं —अल-अस्लु फ़िल-अश्या अल-इबाहा। यानी जब तक किसी चीज़ के हराम होने की साफ़ दलील न मिल जाए, उसे जायज़ समझा जाएगा:

Everything is lawful unless it is declared unlawful.

यहाँ चीज़ से मुराद दुनियवी मामलात हैं। यह एक वाज़ेह बात है कि क़ौमियत के मसले के बारे में क़ुरआन व हदीस में कोई बराह-ए-रास्त हुक्म मौजूद नहीं। क़ुरआन व हदीस में न यह कहा गया है कि क़ौमियत की बुनियाद मज़हब पर है, और न यह कि उसकी बुनियाद वतन पर है। इसलिए इस मामले को उन चीज़ों से मुताल्लिक़ समझा जाएगा, जिनकी बाबत पैग़म्बर इस्लाम ने कहा:

أَنْتُمْ أَعْلَمُ بِأَمْرِ دُنْيَاكُمْ

यानी, तुम अपनी दुनिया के मामले को ज़्यादा जानते हो।

(सहीह मुस्लिम: 2363)

इसका मतलब यह है कि जहाँ तक अक़ीदा और इबादत और आख़िरत के मामलात का ताल्लुक़ है, उनमें मुसलमान पाबंद हैं कि वह शरीअत की रहनुमाई को गलत मतलब निकाले बिना मानना चाहिए , मगर जो चीज़ें इंतज़ाम-ए-दुनिया से ताल्लुक़ रखने वालीं हैं, उनमें इंसान को इख़्तियार है कि वह अपने हालात के लिहाज़ से जिस तरीक़े को दुरुस्त समझे, उसको इख़्तियार करे।

इस मामले में एक पैग़म्बराना वाक़िआ से मज़ीद रहनुमाई मिलती

है। रसूलुल्लाह ﷺ के ज़माने में यमन में एक शख़्स ने नुबुव्वत का दावा किया, उसका नाम मुसैलिमा था। उसने दो आदमियों को मदीना अपना राजदूत बना कर भेजा। उन्होंने मदीना आकर रसूलुल्लाह ﷺ से मुलाक़ात की, और मुद्दई-ए-नुबुव्वत का यह पैग़ाम पहुँचाया कि मैं नुबुव्वत में आपके साथ शरीक किया गया हूँ।

मुसैलिमा के दोनों दूतों से कलाम करने के बाद आपने उनसे पूछा कि इस बारे में तुम्हारी राय क्या है। उन्होंने कहा कि हमारी भी वही राय है जो हमारे साहब की राय है। यह सुन कर आपने फ़रमाया कि ख़ुदा की क़सम, अगर ऐसा न होता कि दूतों को क़त्ल नहीं किया जाता, तो मैं तुम दोनों को क़त्ल कर देता:

أَمَا وَاللهِ لَوْلَا أَنَّ الرُّسُلَ لَا تُقْتَلُ لَضَرَبْتُ أَعْنَاقَكُمَا

(सीरत इब्न हिशाम, V2, P.600)

पैग़म्बर इस्लाम के इस वाक़िआ से इस्लाम का एक उसूल मालूम होता है। वह यह कि इंटरनेशनल मामलात में शरीअत का तरीक़ा भी वही होगा, जो दूसरी क़ौमों का तरीक़ा है। दूसरी क़ौमों में अगर सफ़ीर की जान को हर हाल में क़ाबिल-ए-इज़्ज़त समझा जाता है, तो इस्लाम में भी उसको हर हाल में क़ाबिल-ए-इज़्ज़त समझा जाएगा। इसी तरह इस पर क़ियास करते हुए यह कहना भी बिलकुल दुरुस्त है कि वतनियत के मामले में दुनिया में जिस उसूल को उमूमी तौर पर मान लिया जाए, वही शरीअत में भी इख़्तियार कर लिया जाएगा। इस मामले को ग़ैर-ज़रूरी तौर पर अक़ीदा और मज़हब का मसला नहीं बनाया जाएगा।

एक बार मैं एक जलसे में शरीक था। वहाँ एक साहब ने अपनी तक़रीर में वतन की मोहब्बत की अहमियत बयान की, और कहा कि इस्लाम में भी इसकी अहमियत को तस्लीम किया गया है। चुनाँचे हदीस में आया है:

حُبُّ الْوَطَنِ مِنَ الْإِيمَانِ

“वतन से मोहब्बत करना ईमान का एक हिस्सा है।”

(अल-मौज़ूआत लिस्सग़ानी: 81)

एक आलिम-ए-दीन जो उस वक़्त जलसे में मौजूद थे, उन्होंने इसकी तरदीद करते हुए कहा कि “हुब्ब-उल-वतन मिन अल-ईमान” कोई हदीस नहीं है, यह तो सिर्फ़ एक अरबी मक़ूला है।

मैंने कहा कि यह दुरुस्त है कि हुब्ब-उल-वतन मिन अल-ईमान हदीस नहीं। मगर वह सादा तौर पर सिर्फ़ अरबी का एक मक़ूला नहीं, बल्कि वह फ़ितरत का एक मक़ूला है, जो इंसानी नफ़्सियात की तर्जुमानी करता है। मुहद्दिसीन आम तौर पर इस क़ौल को हदीस-ए-रसूल नहीं मानते, वह इसको ज़ईफ़ या मौज़ू क़रार देते हैं। ताहम, कुछ उलमा ने इस क़ौल को मआनवी (हक़ीक़ी) एतबार से दुरुस्त क़रार दिया है। मसलन, आठवीं सदी हिजरी के मशहूर आलिम मुहम्मद बिन अब्दुर्रहमान अस-सख़ावी (व०1497) ने इस क़ौल के बारे में लिखा है:

لَمْ أَقِفْ عَلَيْهِ، وَمَعْنَاهُ صَحِيحٌ

यानी, मैं इस हदीस से वाक़िफ़ नहीं, लेकिन इसका मफ़हूम दुरुस्त है(अल-मक़ासिद अल-हसना: 386)। मुहद्दिसीन के उसूल के मुताबिक़, इमाम अस-सख़ावी के इस क़ौल का मतलब यह है कि यह क़ौल हदीस-ए-रसूल के तौर पर उनको नहीं मिला, लेकिन दीन-ए-इस्लाम में इसकी अस्ल पाई जाती है। किताबों के ज़खीरे में बहुत-सी चीज़ें हैं, जो ख़्वाह हदीस-ए-रसूल न हों, लेकिन वह यक़ीनी तौर पर हदीस-ए-फ़ितरत हैं। इस बात को बताने के लिए मुहद्दिसीन ने वह उसूल बनाया है, जिसको अस-सख़ावी के हवाले से ऊपर बयान किया गया।

मेरा ख़्याल यह है कि यह क़ौल अगर कलाम-ए-रसूल के तौर

पर साबितशुदा न हो, तब भी वह हदीस-ए-फ़ितरत है। जो आदमी वतन की मोहब्बत को फ़ितरत का जुज़ न समझता हो, वह जानता ही नहीं कि फ़ितरत क्या चीज़ है। हक़ीक़त यह है कि वतन से मोहब्बत इंसानी फ़ितरत का एक लाज़िमी तक़ाज़ा है, और फ़ितरत का तक़ाज़ा होना ही इस बात के लिए काफ़ी है कि वतन से मोहब्बत को इस्लाम का एक हिस्सा समझा जाए। इस्लाम जब दीन-ए-फ़ितरत (religion of nature) है, तो इंसानी फ़ितरत की हर चीज़ इस्लाम का हिस्सा क़रार पाएगी।

मैंने कहा कि इस्लाम दीन-ए-फ़ितरत है, इसलिए फ़ितरत-ए-इंसानी का हर सही तक़ाज़ा भी ऐन इस्लाम का तक़ाज़ा है। मिसाल के तौर पर, हदीस में कहीं यह नहीं आया है कि माँ की मोहब्बत ईमान का हिस्सा है। इसके बावजूद यह हक़ीक़त है कि हर मुसलमान इसको अपना फ़र्ज़ समझता है कि उसके दिल में अपनी माँ से मोहब्बत हो। जिस आदमी के दिल में अपनी माँ की मोहब्बत न हो, वह अपने ईमान में भी कामिल न होगा। क्योंकि फ़ितरत और ईमान में कोई तज़ाद नहीं।

इसी तरह वतन से मोहब्बत भी बिला-शुब्हा हर मुसलमान के लिए एक ईमानी तक़ाज़े की हैसियत रखती है। यह एक हक़ीक़त है कि आदमी जिस मुल्क में पैदा हुआ, जहाँ उसकी परवरिश हुई, जहाँ की हवा में उसने साँस लिया, जहाँ के लोगों से उसके ताल्लुक़ात क़ायम हुए, जहाँ उसने अपनी ज़िंदगी की तामीर की, ऐसे मुल्क से मोहब्बत करना इंसानी शराफ़त का तक़ाज़ा है, और इसी तरह वह इंसान के ईमान व इस्लाम का भी तक़ाज़ा है।

मैंने कहा कि जो चीज़ फ़ितरत-ए-इंसानी का जुज़ हो, उसको क़ुरआन व हदीस में लिखने की ज़रूरत नहीं, वह क़ुरआन व हदीस में लिखे बग़ैर ही शरीअत का एक लाज़िमी जुज़ है। क़ुरआन व हदीस में यह हुक्म नहीं दिया गया कि ऐ मुसलमानो, तुम अपनी माँ से मोहब्बत करो। क्योंकि यह चीज़ हुक्म के बग़ैर अपने आप ही फ़ितरत के ज़ोर पर

हासिल थी। इसी तरह क़ुरआन व हदीस में यह लिखने की ज़रूरत भी नहीं कि ऐ मुसलमानो, तुम अपने वतन से मोहब्बत करो। क्योंकि वतन से मोहब्बत इंसानी शराफ़त का तक़ाज़ा है। वह इंसान एक पस्त इंसान है जिसके दिल में अपने वतन के लिए मोहब्बत न हो। ऐसे गहरे फ़ितरी तक़ाज़े के लिए शरीअत में किसी लफ़्ज़ी हुक्म की ज़रूरत नहीं, वह अपने आप हर मोमिन के दिल में पहले ही से मौजूद होता है।

यहाँ एक मामले की वज़ाहत ज़रूरी है। कुछ लोगों का मानना है कि ईसाई और मुसलमान सच्चे वतन से सच्चा मोहब्बत करने वाले नहीं हो सकते। इसलिए कि उसके के लिए ज़रूरी है कि इस वतन या इस जुग्राफ़ी ख़ित्ते को आदमी मुक़द्दस समझता हो, जहाँ वह पैदा हुआ है। हिंदू चूँकि अपने वतन को मुक़द्दस समझता है, और उसको माबूद का दर्जा देता है, इसलिए वही भारत का सच्चा वतन-परस्त है। ईसाई और मुसलमान चूँकि अपने मख़्सूस अक़ीदे की बुनियाद पर ज़मीन या किसी ज़मीनी ख़ित्ते को मअबूद की तरह मुक़द्दस नहीं समझ सकते, इसी लिए वह भारत के सच्चे देशभक्त भी नहीं हो सकते।

यह एक बे-बुनियाद बात है। अगर कोई शख़्स अपने बनाए हुए अक़ीदे की बुनियाद पर अपनी माँ को मअबूद मान ले, और उसकी परस्तिश करने लगे, तो इस बुनियाद पर उसको यह कहने का लाइसेंस नहीं मिल जाएगा कि उसके सिवा बाक़ी लोग अपनी माँ से मोहब्बत नहीं करते, क्योंकि वह अपनी माँ को मअबूद नहीं समझते। किसी शख़्स या गिरोह को बिला-शुब्हा यह आज़ादी हासिल है कि वह अपनी माँ को या अपने वतन को मअबूद समझने लगे। मगर किसी को भी क़ानून या उसूल की बुनियाद पर ऐसे लोगों को यह हक़ नहीं दिया जा सकता कि वह दूसरों के बारे में यह हुक्म लगाए कि वह अपनी माँ को या अपने वतन को मअबूद मानें, वरना वह न अपनी माँ से मोहब्बत करने वाले क़रार पाएँगे, और न अपने वतन से।

हक़ीक़त यह है कि इस तरह के मामलात का ताल्लुक़ आलमी सतह पर माने हुए रिवाज से है, न कि किसी शख़्स या गिरोह के अपने मफ़रूज़ा से। पूरी दुनिया में जब यह मान लिया गया है कि क़ौमियत की बुनियाद वतन पर है, और वतन से मुराद आम मानी में एक जुग़राफ़ियाई इलाक़ा (geographical unity) है, न कि किसी पुरअसरार मानी में मज़हबी एकता (religious unity)। तो वतन से मोहब्बत का मेयार हर एक के लिए यही होगा। अलबत्ता, हर एक को यह आज़ादी हासिल रहेगी कि वह इसके अलावा कोई और अक़ीदा पसंद करता हो, तो उसको अपने लिए इख़्तियार कर ले। (अल-रिसाला, सितंबर 1998)

मुसलमानों की क़ौमियत

आज़ादी से पहले बर्र-ए-सगीर हिंद (भारतीय उपमहाद्वीप) में क़ौमियत के मसले पर दो नुक्ता-ए-नज़र थे। एक इक़बाल का। उनका कहना था कि क़ौमियत का ताल्लुक़ मज़हब से है। दूसरा नज़रिया मौलाना हुसैन अहमद मदनी का था। उन्होंने कहा कि मौजूदा ज़माने में क़ौमें औतान से बनती हैं। यानी अक़ीदे का ताल्लुक़ मज़हब से है और क़ौमियत का ताल्लुक़ वतन से। मेरे नज़दीक मौलाना हुसैन अहमद मदनी का नज़रिया दुरुस्त था। मैं समझता हूँ कि मज़हब के एतबार से सारी दुनिया के मुसलमानों का एक मज़हब है। मगर जहाँ तक क़ौमियत का सवाल है, उसका ताल्लुक़ वतन (homeland) से है, यानी जिस मुस्लिम गिरोह का जो वतन है, वही उसकी क़ौमियत है।

इसका मतलब यह है कि हिंदुस्तान जैसे मुल्क पर अगर कोई मुस्लिम मुल्क हमला करे, तो यह हमला मुसलमानों के मज़हब पर

हमला नहीं होगा, बल्कि उनके साझा वतन पर हमला क़रार पाएगा। वतन पर हमले की सूरत में मुसलमान भी उसकी हिफ़ाज़त के लिए उसी तरह आगे आएँगे, जैसे उनके ग़ैर-मुस्लिम हमवतन। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि हमला किसी मुस्लिम देश ने किया है या किसी ग़ैर-मुस्लिम देश ने। (अल-रिसाला, अगस्त 2000, जोधपुर का सफ़र)

एक ग़ैर-हक़ीक़ी सोच

अल्लामा इक़बाल की एक नज़्म है, जिसका उनवान है, "वतनियत"। इसमें वह कहते हैं कि:

तहज़ीब के आज़र ने तराशे हुए सनम और

इसके बाद उनका अगला शेर यह है:

इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सबसे वतन है
जो पैरहन उसका है, वह मज़हब का कफ़न है

यह नज़्म अल्लामा इक़बाल की शायरी की किताब 'कुल्लियात-ए-इक़बाल' के 'बांग-ए-दरा' वाले हिस्से में शामिल है। इक़बाल के इस शेर का इस्लाम की तालीमात से कोई ताल्लुक़ नहीं। आज की दुनिया में क़ौमियत को वतन पर मबनी माना जाता है। मेरे नज़दीक इस तसव्वुर में और इस्लाम में कोई टकराव नहीं, मगर इक़बाल के ज़ेहन में इस्लाम का वह तारीखी तसव्वुर था, जो बाद को मुस्लिम एम्पायर के ज़माने में बना। मुस्लिम एम्पायर के दौर में सारे मुसलमानों का वतन एक ही माना जाता था, लेकिन दूसरी आलमी जंग के बाद जब मुस्लिम एम्पायर टूट गया और पचास से ज़्यादा अलग-अलग मुल्क बन गए, तो अब मुसलमानों की क़ौमियत उनके मौजूदा वतन की निस्बत से

मुतअय्यन की जाएगी। इस मामले में मुस्लिम एम्पायर का ज़माना कोई मियारी चीज़ नहीं। क़दीम मुस्लिम एम्पायर मुसलमानों की सियासी तारीख़ का एक वक़्ती ज़ाहिरा था, वह हमेशा रहने वाला इस्लामी हुक्म या तालीम नहीं है। (डायरी, 12 दिसंबर 2007)

क़ौमियत की बुनियाद वतन

डॉक्टर मुबारक अली पाकिस्तान के एक आला तालीमयाफ़्ता आदमी हैं। उन्होंने एक इंटरव्यू के दौरान कहा कि आजकल मुस्लिम उम्मा का लफ़्ज़ जिस आलमी मानी में बोला जाता है, वह इससे पहले कभी इस्लामी दौर में मौजूद न था। सच्ची बात तो यह है कि मुस्लिम उम्मा का यह तसव्वुर बे-दलील है; उसका हक़ीक़ी तसव्वुर न पहले था, न अब है। मुसलमानों की जो बड़ी-बड़ी सल्तनतें बनी हैं, वह भी दो-मअनी रही हैं। मसलन, उस्मानी एम्पायर के दौरान अर्मेनियन एक अलग मिल्लत थी और उसे मिल्लत ही बोला जाता था, और मिल्लत का लफ़्ज़ आम तौर पर छोटी अक़वाम के लिए इस्तेमाल हुआ है। मुसलमानों में क़ौमी रियासतों का वजूद बहुत शुरू से रहा तमाम मुस्लिम क़ौमों की पहचान हमेशा अपने-अपने इलाक़े, ज़बान या नस्ल की बुनियाद पर रही है। क्योंकि इस्लाम मज़हब है, क़ौम नहीं। मीसाक़-ए-मदीना में भी यह चीज़ साफ़ तौर पर देखी जा सकती है, जब यहूद भी मुस्लिम उम्मा में शामिल थे। यह तसव्वुर वक़्त और हालात की मुताबक़त में ढलता रहा है। लिहाज़ा मेरी नज़र में हमारे इंटरनेशनल मामलात और ताल्लुक़ात इंसानियत की बुनियाद पर होने चाहिएँ। (संडे मैगज़ीन, 18 मई 2003)

रसूलुल्लाह ﷺ जब मक्का से हिजरत करके मदीना आए और पहली इस्लामी स्टेट बनाई, तो उस वक़्त वहाँ कुछ यहूदी क़बीले भी आबाद थे। उस वक़्त आपने एक डिक्लेरेशन जारी किया, जिसको आम तौर पर मीसाक़-ए-मदीना कहा जाता है। इस मीसाक़ में आपने लिखा था, जिसका एक जुमला यह था कि यहूद मुसलमानों के साथ एक उम्मत हैं:

وَإِنَّ يَهُودَ بَنِي عَوْفٍ أُمَّةٌ مَعَ الْمُؤْمِنِينَ

"और यह कि बनू औफ़ के यहूद मुसलमानों के साथ एक उम्मत हैं।" (सीरत इब्न हिशाम, V1, P.503)

हक़ीक़त यह है कि क़ौमियत की बुनियाद हमेशा वतन होती है, मज़हब से नहीं। (डायरी, 26 अप्रैल 2004)

इस जुमले में उम्मत का लफ़्ज़ तक़रीबन उसी मानी में है, जिस मानी में आजकल क़ौम (nation) का लफ़्ज़ बोला जाता है। यानी मदीना के यहूदी और मदीना के मुसलमान, जो एक साथ एक वतन में रहते हैं, दोनों हम-क़ौम हैं। दोनों एक ही क़ौम से ताल्लुक़ रखते हैं। इस उसूल को हिंदुस्तान पर लागू किया जाए, तो यह कहना सही होगा कि यहाँ के हिंदू और मुसलमान दोनों एक उम्मत या एक क़ौम हैं। दोनों की क़ौमियत (nationhood) एक है। यही मामला दूसरे उन मुल्कों का है जहाँ मुसलमान ग़ैर-मुस्लिमों के साथ रहते हैं। (डायरी, 1 अक्तूबर 2003)

क़ौम और क़ौमियत

क़ुरआन से मालूम होता है कि हर पैग़म्बर ने अपने ग़ैर-मोमिन मुख़ातिबीन को "ऐ मेरी क़ौम" के लफ़्ज़ से ख़िताब किया है (मिसाल

के तौर पर क़ुरआन की इन आयात का मुताला कीजिए: 7:61, 67, 79, 85। इस क़ुरआनी बयान के मुताबिक़, मोमिन और ग़ैर-मोमिन की क़ौमियत (nationality) एक ही बुनियाद पर होती है। हक़ीक़त यह है कि क़ौमियत का ताल्लुक़ मज़हब से नहीं है, बल्कि वतन से है। मज़हबी साझेदारी को बताने के लिए मिल्लत का लफ़्ज़ बोला जाएगा (अन-निसा, 4:125), और एक ही वतन से जुड़े होने को बताने के लिए क़ौमियत का लफ़्ज़ (हूद, 11:89)। मौजूदा ज़माने में वतन (homeland) को क़ौमियत की बुनियाद समझा जाता है। इस्लाम का उसूल भी यही है। इस्लाम के मुताबिक़ भी वतन ही क़ौमियत की बुनियाद है।

इस एतबार से दो क़ौमी नज़रिया एक ग़ैर-इस्लामी नज़रिया है। दो क़ौमी नज़रिया मुसलमानों में यह ज़ेहन पैदा करता है कि हम अलग क़ौम हैं और दूसरे लोग अलग क़ौम। जबकि सही इस्लामी ज़ेहन यह है कि मुसलमान अपने आपको दूसरों का हम-क़ौम समझें। वह दूसरों को "ऐ मेरी क़ौम के लोगो" कह कर ख़िताब कर सकें, जैसा कि तमाम पैग़म्बरों ने किया। क़ुरआन में इर्शाद हुआ है—ऐ लोगो, हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया, और तुमको शु'ऊब और क़बाइल में तक़सीम कर दिया ताकि तुम एक-दूसरे को पहचानो (49:13)। इस आयत में शु'ऊब से मुराद वह क़ौम है जो एक वतन से जुड़कर बनती है, और क़बीला से मुराद वह गिरोह है जो नस्ली रिश्ते से बनता है। क़ुरआन के मुताबिक़, ये दोनों तरह की गिरोहबंदी सिर्फ़ पहचान के लिए है; इसका अक़ीदा या मज़हब के रिश्ते से कोई ताल्लुक नहीं।

1947 से पहले मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने कहा था कि "आज के दौर में क़ौमें वतन की बुनियाद पर बनती हैं।" उनका यह बयान अपनी जगह सही था। लेकिन मेरी राय में उसमें "आज के दौर में"

की शर्त सही नहीं थी। हक़ीक़त यह है कि क़ौम हमेशा से वतन की बुनियाद पर ही बनती रही है। मौजूदा ज़माने में सिर्फ़ यह हुआ है कि दूसरी बहुत-सी चीज़ों की तरह, इस मामले में भी पहचान और और इनको तय करने के नए तरीके अपनाए गए हैं। जैसे पासपोर्ट में क़ौमियत दर्ज करना, इंटरनेशनल राइट्स के लिए क़ौमियत की क़ानूनी तारीफ़, मुल्क की निस्बत से किसी क़ौम के अफ़राद के हुक़ूक़ को क़ानून की ज़बान में मुतअय्यन करना, वग़ैरह। यह कहना सही होगा कि क़ौम का लफ़्ज़ मौजूदा ज़माने में भी असल में उसी मायने में बोला जाता है जिस मानी में वह पुराने ज़माने में बोला जाता था, सिर्फ़ इस फ़र्क़ के साथ कि पहले इसका मतलब मोटे तौर पर लिया जाता था और अब अब पूरी तफ़सील के साथ लिया जाता है।"

कुछ लोग क़ौमियत की तशरीह इंतिहा-पसंदाना अंदाज़ में करते हैं। यहाँ तक कि वह क़ौमियत को मज़हब के हम-मानी बना देते हैं, मगर यह एक नज़रियाती इंतिहा-पसंदी है। इस क़िस्म की नज़रियाती इंतिहा-पसंदी की मिसालें ख़ुद अहल-ए-मज़हब में भी पाई जाती हैं। मसलन, मौजूदा ज़माने में कुछ मुस्लिम मुफ़क्किरीन ने इस्लाम की तशरीह ऐसे इंतिहा-पसंदाना अंदाज़ में की कि इस्लाम के सिवा हर निज़ाम ताग़ूती निज़ाम (ग़ैर-इस्लामी निज़ाम) बन गया। किसी मुसलमान के लिए ऐसे ताग़ूती निज़ाम के साथ तालमेल करके रहना हराम क़रार पा गया। यहाँ तक कि जिस निज़ाम को वे "ताग़ूती निज़ाम" मानते हैं, उसमें तालीम हासिल करना, सरकारी मुलाज़मत करना, वोट देना, अपने झगड़ों के कानूनी हल के लिए मुल्क की अदालत में जाना—सब का सब हराम क़रार पा गया।

ताग़ूती निज़ाम का यह नज़रिया कुछ अफ़राद के इंतिहा-पसंदाना ज़ेहन की पैदावार था, उसका ख़ुदा और रसूल वाले इस्लाम से कोई ताल्लुक़ नहीं। यही वजह है कि ज़मीनी सच्चाइयों ने इस सोच से जुड़े

लोगों को मजबूर कर दिया कि वे अपनी अमली ज़िंदगी में इसे छोड़ दें।चुनाँचे अब यह तमाम लोग बिला-एलान अमली तौर पर इस इंतिहा-पसंदाना नज़रिया को छोड़ चुके हैं। यही मामला क़ौमियत का भी है। मग़रिब के कुछ इंतिहा-पसंद मुफक्किरीन ने क़ौमियत को इतना बढ़ाया कि उसे पूरा मज़हब बना दिया। मगर हक़ाइक़ की चट्टान से टकरा कर यह नज़रिया टूट कर ख़त्म हो गया। अब अमली तौर पर क़ौमियत का तसव्वुर तक़रीबन उसी फ़ितरी मानी में बोला जाता है जिस फ़ितरी मानी में वह क़ुरआन के अंदर इस्तेमाल हुआ था।

बीसवीं सदी के पहले हिस्से में उठने वाले मुस्लिम रहनुमा इस फ़र्क़ को समझ न सके। उन्होंने क़ौमियत और वतनियत के मामले में इस ग़ैर-फ़ितरी इंतिहा-पसंदी को अस्ल समझ लिया और इस बुनियाद पर उसके ग़ैर-इस्लामी होने का ऐलान कर दिया। इसकी एक मिसाल मशहूर मुस्लिम शायर इक़बाल (व०1938) की है। उन्होंने क़ौमियत और वतनियत के इस इंतिहा-पसंदाना वक़्ती तसव्वुर को अस्ल समझ कर उसके बारे में यह अशआर कहे थे:

"इस दौर में मय और है, जाम और है, जम और
तहज़ीब के आज़र ने तरशवाय हुए सनम और
इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सब से वतन है
जो पैरहन उसका है, वह मज़हब का कफ़न है"

इस का मतलब यह है के आज का ज़माना बदल चुका है, सोच और माहौल सब नए हो चुके हैं। पश्चिमी तहज़ीब ने इंसानों के पूजने के लिए नए-नए बुत तराश लिए हैं। इन सब नए बनाए गए 'ख़ुदाओं' में सबसे बड़ा ख़ुदा "वतन" (वतनपरस्ती) को बना दिया गया है। इक़बाल कहते हैं कि देश के नाम पर जो यह सियासत और नज़रिया फैलाया जा रहा है, वह असल में इस्लाम की आत्मा को ख़त्म करने जैसा है।

क़ौमियत और वतनियत के बारे में यह नज़रिया बिला-शुब्हा बे-बुनियाद है। अजीब बात है कि उस दौर के अकसर मुस्लिम उलमा और दानिशवरों ने सियासी नौइयत की चीज़ों को मज़हब या इस्लाम के लिए मौत व हयात का मसला समझ लिया। हालाँकि कोई भी सियासी उतार-चढ़ाव इस्लाम के हमेशा बने रहने के लिए ख़तरा नहीं बन सकता। मसलन, बीसवीं सदी के आग़ाज़ में तुर्की की उस्मानी सल्तनत टूटी, तो शिब्ली नोमानी ने यह शेर कहा:

"ज़वाल-ए-दौलत-ए-उस्माँ, ज़वाल-ए-शरअ व मिल्लत है"
अज़ीज़ो, फ़िक्र-ए-फ़रज़ंद ओ अयाल ओ ख़ानमाँ कब तक"

इस का मतलब यह है के तुर्की की उस्मानी सल्तनत का ख़त्म होना समझो इस्लामी शरीअत और पूरी मुस्लिम कौम की तबाही है। ऐ दोस्तों! तुम कब तक सिर्फ़ अपने बीवी-बच्चों और घर-बार की फ़िक्र में पड़े रहोगे? अब तो पूरी कौम पर भारी मुसीबत आ पड़ी है!

यह तसव्वुर यक़ीनी तौर पर बे-बुनियाद है कि किसी हुकूमत का टूटना "शरअ व मिल्लत" के लिए ज़वाल के हम-मानी है। ऐसा न कभी हुआ और न ऐसा कभी हो सकता। दौर-ए-अव्वल में ख़िलाफ़त-ए-राशिदा ख़त्म हुई, मगर इस्लाम बाक़ी रहा। उसके बाद अमवी (उमय्यद) सल्तनत टूटी, तब भी इस्लाम का सफ़र बदस्तूर जारी रहा। उसके बाद अब्बासी सल्तनत टूटी, अन्दलुस की मुस्लिम सल्तनत टूटी, मिस्र की फ़ातिमी सल्तनत टूटी, हिंदुस्तान की मुग़ल सल्तनत टूटी, वग़ैरह-वग़ैरह। मगर सल्तनतों का यह ज़वाल इस्लाम के ज़वाल का सबब न बन सका।

इसी तरह बीसवीं सदी में कई इंतिहा-पसंदाना नज़रियात उभरे। मसलन, कम्युनिज़्म, नाज़ीइज़्म, नेशनलिज़्म और वतनियत, वग़ैरह। मगर इन सब का आख़िरी अंजाम यह हुआ कि फ़ितरत का क़ानून

उनके इस कट्टरपन को ख़ारिज कर देता है। और आख़िरकार जो चीज़ बची, वह वही थी जो क़ानून-ए-फ़ितरत के मुताबिक़ मतलूब थी। फ़ितरत का अबदी क़ानून हर दूसरी चीज़ पर बाला है। फ़ितरत का क़ानून अपने आप यह करता है कि वह ग़ैर-मोतदिल सोच को रद्द करके उन्हें ज़िंदगी के मैदान से हटा देता है और उनके बजाय मोतदिल सोच को काम करने का मौक़ा देता है। (अल-रिसाला, फ़रवरी 2004)

क़ौमियत का मसला

सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी 1838 में पैदा हुए और 1897 में उनकी वफ़ात हुई। वह उस नज़रिया की एक अलामत हैं जो तुर्की के सुल्तान अब्दुल हमीद की हिमायत से शुरू हुआ और जिसको इत्तिहाद-ए-इस्लामी (पान इस्लामिज़्म) कहा जाता है। सैयद जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के ज़माने में तक़रीबन पूरी मुस्लिम दुनिया अंग्रेज़ों और फ़्रांसीसियों की सियासी मातहत में आ गई थी। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी इस मग़रिबी इक़्तेदार को ख़त्म करने के लिए उठे। इस मक़सद को ताक़त देने के लिए उन्होंने इत्तिहाद-ए-इस्लामी का नज़रिया बनाया। उनका कहना था कि तमाम दुनिया के मुसलमान, ख़्वाह वह मेजोरिटी में हों या माइनॉरिटी में, वह सब के सब एक वाहिद उम्मत की हैसियत रखते हैं। वह सब के सब एक ही सियासी वहदत में बंधे हुए हैं।

सैयद अबुल आला मौदूदी ने इसी नज़रिया के मुताबिक़ कहा कि तमाम दुनिया के मुसलमान एक इंटरनेशनल पार्टी की हैसियत रखते हैं। आयतुल्लाह ख़ुमैनी और दूसरे रहनुमाओं ने इसको उम्माह का लफ़्ज़ दिया, जो बहुत जल्द तमाम दुनिया के मुसलमानों में मक़बूल हो गया।

इसी नज़रिया को इक़बाल ने अपने एक शेर में इस तरह बयान किया है:

“एक हों मुस्लिम हरम की पासबानी के लिए
नील के साहिल से लेकर ता-ब-ख़ाक-ए-काशग़र”

यह अंतरराष्ट्रीय नज़रिया कॉलोनियल दौर में हालात से टकराता हुआ महसूस नहीं होता था, क्योंकि उस वक़्त दुनिया के ज़्यादातर मुल्क अमली तौर पर एक ही सियासी निज़ाम के तहत थे। तक़रीबन तमाम मुसलमान इस एक सियासी निज़ाम के शहरी शुमार होते थे। मगर जब कोलोनियल निज़ाम टूटा और नेशनलिज़्म का दौर आया, तो बहुत-से अलग-अलग मुल्क बन गए। पहले अगर एक एम्पायर की वफ़ादारी का मसला था, तो अब एक सौ मुल्कों की अलग-अलग वफ़ादारी का मसला सामने आ गया:

Pan-Islamism was the dominant ideology of the Muslim world of the 19th century before the rise of Nationalism. (Encyclopedia Britannica, Vol. 7, p. 719)

दूसरी आलमी जंग के बाद दुनिया का नक़्शा बदला, तो मुसलमान फ़िक्री एतबार से एक पेचीदा सूरत-ए-हाल में मुब्तला हो गए। जो लोग आलमी क़ौमियत के ढाँचे में अपनी सियासी शनाख़्त बनाए हुए थे, अब उनको मुक़ामी क़ौमियत के ढाँचे में दोबारा अपनी सियासी शनाख़्त को तलाश करना पड़ा। इस नाज़ुक वक़्त में, मेरे इल्म के मुताबिक़, पूरी मुस्लिम दुनिया में सिर्फ़ एक आलिम था जिसने इस सवाल का जवाब फ़राहम करने की कोशिश की। यह मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी (1879–1957) थे। उन्होंने 1947 से पहले की तेज़ सियासी हलचल के दौर में बड़ी जुर्रत के साथ कहा था:

“आज के ज़माने में क़ौमें वतन से बनती हैं।”

यह बिला-शुब्हा एक नई और गहरी रहनुमाई थी। लेकिन अफ़सोस कि मौलाना की वफ़ात के बाद देवबंद के कुछ उलेमा ने यह कहकर इस बात की अहमियत कम कर दी कि हज़रत का यह बयान सिर्फ़ एक ख़बर थी , कोई इंशा, यानी शरई फ़ैसला नहीं।

यह मामला कोई सादा मामला नहीं। यह बेहद नाज़ुक मामला है। ज़रूरत है कि इस मामले में इंतिहाई ग़ैर-जानिबदाराना (unbiased) अंदाज़ के साथ ग़ौर किया जाए। अगर मौलाना हुसैन अहमद मदनी के मौक़फ़ को छोड़ दिया जाए, तो नज़रिये और अक़ीदे के एतबार से यह मानना पड़ेगा कि पूरी दुनिया के मुसलमानों की क़ौमियत (nationality) इस्लाम है। दूसरे लफ़्ज़ों में यह कि मुसलमानों की सियासी वफ़ादारी साझा तौर पर उनके मज़हब के साथ वाबस्ता है। अब जबकि हर मुल्क में नेशनलिटी को वतन (homeland) के साथ जोड़ दिया गया है, तो यह नज़रिया हर जगह टकराव पैदा कर रहा है।

मसलन, अमरीका या ब्रिटानिया या इंडिया में जदीद तसव्वुर-ए-क़ौमियत का तक़ाज़ा यह है कि इन मुल्कों में बसने वाले मुसलमानों की सियासी वफ़ादारियाँ सिर्फ़ अपने वतन के साथ वाबस्ता हों, उनकी कोई वतन से बाहर सियासी वफ़ादारी (extra-territorial loyalty) न हो। जबकि अल-उम्मह का नज़रिया बरअक्स तौर पर यह कहता है कि मुसलमानों की वफ़ादारियाँ अंतरराष्ट्रीय इस्लाम के साथ होनी चाहिएँ, न कि मुल्की वतनियत के साथ। इस तज़ाद ने सारी दुनिया के हर उस मुल्क में मुसलमानों की वफ़ादारी को मुश्तबह कर दिया है जहाँ मुसलमान एक माइनॉरिटी के तौर पर रहते हैं।

यह एक बेहद संगीन मसला है। ख़ालिस नज़रियाती तौर पर मुसलमानों के लिए दो में से एक का चॉइस है। या तो वह अपने खुले मौक़फ़ (stand) के मुताबिक़ यह कहें कि हम आलमी इस्लामी क़ौमियत के फ़र्द हैं, और इस्लाम के अलावा किसी दूसरी क़ौमियत

को नहीं मानते। अगर वे यह मौक़फ़ अपनाते हैं, तो उन्हें इसकी हर क़ीमत दिल की आमादगी के साथ अदा करना चाहिए। मसलन, अगर किसी मुल्क में उनकी वतन से वफ़ादारी पर शक किया जाए और उन्हें मुल्क की फ़ौज में न लिया जाए, विदेश मंत्रालय में जगह न मिले, उन्हें राजदूत न बनाया जाए, देश की अंतरराष्ट्रीय नुमाइंदगी में शामिल न किया जाए, या उन्हें दूसरे दर्जे का शहरी समझा जाए, तो उन्हें इसे अपने अक़ीदे की फ़ितरी क़ीमत समझकर क़ुबूल करना चाहिए।

मुसलमानों के सामने दूसरा रास्ता यह है कि वे साफ़ तौर पर कहें: "अल-उम्मह का यह अंतरराष्ट्रीय सियासी नज़रिया कुछ मुस्लिम रहनुमाओं की अपनी राय थी। उन्होंने उसे ख़ास हालात के रद्द-ए-अमल (reaction) में इख़्तियार किया और उसको ग़लत तौर पर इस्लाम का नाम दे दिया।"

अब हम इस नज़रिया को रद्द करते हैं और जैसा कि मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी ने एलान किया था, हम इस राय को इख़्तियार करते हैं कि अक़ीदा और मज़हब के एतबार से बिला-शुब्हा तमाम दुनिया के मुसलमान हम-मज़हब हैं, मगर जहाँ तक क़ौमियत (nationality) का ताल्लुक़ है, हर मुसलमान की क़ौमियत वही है जो उसका वतन है। क़ौमियत का ताल्लुक़ वतन से है, न कि मज़हब से।" यह एलान अगर मुसलमानों की तरफ़ से खुले तौर पर कर दिया जाए, तो मज़कूरा टकराव ख़त्म हो जाएगा और फिर किसी को यह मौक़ा न होगा कि वह उनकी वतनी वफ़ादारी पर शक करे।

अगर मुसलमान इन दोनों में से कोई एक रुख़ साफ़ तौर पर न अपनाएँ, बल्कि बिना कुछ कहे अपने मुल्क के माद्दी फ़ायदों में हिस्सा लेने लगें, तो यह दोहरा मयार होगा। यानी अपने अक़ीदे या नज़रिये में बदलाव का ऐलान किए बिना, ख़ामोशी से अपने अमल को बदल लेना। ऐसी रविश को उसूलों पर क़ायम रविश नहीं, बल्कि

मौक़ापरस्ती (opportunism) कहा जाएगा। इस तरह दो-अमली की रविश इख़्तियार करना कोई सादा बात नहीं। इसके नुक़सानात बेहद संगीन हैं। ऐसा करने की सूरत में यह होगा कि मुसलमानों के अंदर से बाअसूल किरदार का मिज़ाज ख़त्म हो जाएगा। उनका रूहानी इर्तिका (spiritual development) रुक जाएगा। उनके अंदर फ़िक्री अमल (intellectual process) जारी न हो सकेगा। उनकी शख़्सियत इर्तिकाई (personality development) मनाज़िल तय करने से महरूम हो जाएगी। वह उस अज़ीम नेमत की लज़्ज़त से नाआशना हो जाएँगे जिसे क़ुरआन में ईमान में बढ़ोतरी कहा गया है (48:4)। इस सूरत-ए-हाल का आख़िरी नतीजा यह होगा कि वह जुमूद-ए-ज़ेहनी (intellectual stagnation) का शिकार होकर रह जाएँगे। वह इस क़ाबिल न रहेंगे कि वह इल्म व फ़िक्र के एतबार से दुनिया में कोई बड़ा कारनामा अंजाम दे सकें।

क़ुरआन में बताया गया है कि हर पैग़म्बर की उम्मत को ख़ुदा की तरफ़ से अलग-अलग शरीअत और अलग-अलग मिन्हाज (अमली तरीक़ा) दिया गया (5:48)। यह बात बज़ाहिर उम्मत के हवाले से कही गई है, मगर वह हक़ीक़तन ज़माने की निस्बत से मक़सूद है। इसका मतलब यह है कि हर ज़माने के लोगों को उनके ज़मानी हालात की निस्बत से उन्हें शरीअत और मिन्हाज अता किया गया। इसी लिए फ़िक़्ह में मसला बना है कि ज़माना और मुक़ाम के बदलने से अहकाम बदल जाते हैं—

تتغير الاحكام بتغير الزمان والمكان

(तफ़सील के लिए मुलाहिज़ा हो, इलाम अल-मुवक्क़िईन लि-इब्न अल-क़य्यिम अल-जौज़िया, 3, P.11; मजल्लत अल-अहकाम अल-अद्लिया, माद्दा 39)।

तशरीअ-ए-इलाही का यह उसूल सिर्फ़ पैग़म्बर इस्लाम से पहले के लोगों के लिए नहीं था, बल्कि वह पैग़म्बर इस्लाम के बाद

आपकी उम्मत के लिए भी उसी तरह मतलूब है। सिर्फ़ इस फ़र्क़ के साथ कि पिछली उम्मतों को बराह-ए-रास्त पैग़म्बर के ज़रिया इस तब्दीली-ए-हुक्म की तालीम दी जाती थी, और अब ख़त्म-ए-नुबुव्वत के बाद उलमा के इज्तेहाद के ज़रिया तब्दीली-ए-हुक्म का यह काम अंजाम पाएगा।

इस तशरीई उसूल के मुताबिक़, बजा तौर पर कहा जा सकता है कि क़ौमियत (nationality) के मामले में मौजूदा ज़माने में जो तसव्वुर आलमी सतह पर राइज और मान्य हो चुका है, उसकी रौशनी में इज्तेहाद करके दोबारा इस मामले में शरीअत का रुख़ तय किया जाएगा और यह राय वही है जिसका एलान 1947 से पहले के ज़माने में मौलाना सैयद हुसैन अहमद मदनी ने किया था।

शरई राय यह है कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान अक़ीदा और मज़हब के एतबार से बिला-शुब्हा एक अक़ीदा और एक मज़हब रखते हैं, मगर जहाँ तक क़ौमियत का ताल्लुक़ है, वह मुल्क की निस्बत से मुतअय्यन होगी। यानी हर मुल्क के मुसलमानों की क़ौमियत वही क़रार पाएगी जो उस मुल्क के दूसरे गिरोहों की है।

(अल-रिसाला, दिसंबर 2003)

हिंदुस्तानी क़ौमियत

इस वक़्त हमारी गुफ़्तगू का मौज़ू है—हिंदुस्तानी क़ौमियत की तश्कील किस तरह होती है:

What Constitutes Indian Nationalism

यह सवाल बिला-शुब्हा निहायत अहम क़ौमी सवाल है। इस सवाल के हल पर मुल्क की तामीर व तरक़्क़ी का दारोमदार है। इस

एतबार से इस सवाल को 1947 ही में आख़िरी तौर पर तय हो जाना चाहिए था। मगर हम देखते हैं कि आज भी इस सवाल पर बहस जारी है। इससे ज़ाहिर होता है कि लगभग आधी सदी गुज़र जाने के बाद भी इस सवाल का ऐसा जवाब नहीं मिल सका, जिस पर सबका इत्तिफ़ाक़ हो।

इस ग़ैर-मामूली देरी का सबब क्या है। मेरे नज़दीक इसका बुनियादी सबब है—एक चीज़ और दूसरी चीज़ के बीच के फ़र्क़ का ख़याल न रखना। समाजी ज़िंदगी में हमेशा कुछ चीज़ें नेशनल यानी साझा होती हैं, और कुछ चीज़ें प्राइवेट यानी निजी। क़ौमी मामलों में सबके लिए एक राय होना ज़रूरी होता है, जबकि ज़ाती मामलों में इख़्तिलाफ़ होने की गुंजाइश होती है। नेशनल मामलात को अगर हर आदमी के ज़ौक़ (taste) पर छोड़ दिया जाए, तो मुल्क तबाह हो जाएगा। इसी तरह प्राइवेट हिस्से में अगर तमाम लोगों को एक रविश पर क़ायम करने की कोशिश की जाए, तो पूरा समाज बिखराव का शिकार हो जाएगा।

इस मसले के उलझाव के ज़िम्मेदार मुख़्तलिफ़ फ़िरक़ों के वो पुरजोश लोग हैं जो दोनों को एक-दूसरे से अलग न रख सके। उन्होंने यह ग़लती की कि एक नेशनल मामले को प्राइवेट बनाने की कोशिश की, और एक मामला जो प्राइवेट था उसको नेशनल दर्जा देने पर इसरार किया। इस क़िस्म की ग़ैर-फ़ितरी और ग़ैर-हक़ीक़त-पसंदाना कोशिश सिर्फ़ बिखराव पैदा कर सकती थी, और उसने सिर्फ़ वही पैदा किया।

मिसाल के तौर पर हमारे जिन लीडरों ने "कॉमन सिविल कोड" की दफ़ा भारत के संविधान में शामिल की, उन्होंने एक प्राइवेट मामले को नेशनल बनाने की कोशिश की। क्योंकि शादी-ब्याह या निकाह-ओ-तलाक़ का मामला लोगों की प्राइवेट ज़िंदगी से ताल्लुक़ रखता है। वह हर एक का इन्फ़िरादी मामला है, न कि पूरे मुल्क का क़ौमी मामला।

इसी ग़लती का यह नतीजा है कि इस दस्तूरी दफ़ा ने ग़ैर-ज़रूरी बहस पैदा करने के सिवा अब तक कुछ और नहीं किया।

इसी तरह कुछ मुसलमान पाकिस्तान की जीत पर ख़ुशी मनाते हैं और कहते हैं कि पाकिस्तान एक मुस्लिम मुल्क है। इस बुनियाद पर यह हमारे लिए एक जज़्बाती मसला है। मगर यह नेशनल मामले को प्राइवेट मामला बनाना है। इंडिया हमारा वतन है। जब भी इंडिया का मुक़ाबला किसी दूसरे मुल्क से होगा, ख़्वाह वह क्रिकेट के मैदान में हो या जंग के मैदान में, तो हमारे जज़्बात लाज़िमी तौर पर अपने वतन के साथ होंगे। इस मामले में इन्फ़िरादी रविश हरगिज़ क़ाबिल-ए-बर्दाश्त नहीं हो सकती। नॉन-कॉमन को कॉमन बनाना जितना ग़लत है, उतना ही कॉमन को नॉन-कॉमन बनाना भी ग़लत है।

इस मसले को सादा और फ़ितरी तौर पर समझने की आसान सूरत यह है कि इसको ख़ानदान की सतह पर देखा जाए। ख़ानदान किसी क़ौम की इब्तिदाई यूनिट होता है। बहुत-से ख़ानदानों के मजमूए ही का नाम नेशन है। अब देखिए कि ख़ानदान की सतह पर इस मसले की नौइयत क्या है। आप जानते हैं कि ख़ानदान की सतह पर हमेशा कुछ बातें कॉमन इंटरेस्ट की होती हैं। उनमें हर फ़ैमिली मेंबर की राय सिर्फ़ एक होती है और उनके अलावा कुछ चीज़ें इन्फ़िरादी ज़ौक़ (taste) की होती हैं। उनमें हर फ़ैमिली मेंबर की सोच अलग-अलग होती है।

कॉमन इंटरेस्ट में मिसाल के तौर पर एक अहम चीज़ मआशी या माली इंटरेस्ट है। वह चीज़ें जो फ़ैमिली के मआशी इंटरेस्ट से ताल्लुक़ रखती हों, उनमें हर एक की सोच बिलकुल यकसां होती है। ऐसे मामलात में फ़ैमिली के तमाम मेंबर बिला-इख़्तिलाफ़ एक ही नुक़्ता-ए-नज़र को अपनाए हुए होते हैं। ऐसे मामलात में अगर कई नुक़्ता-ए-नज़र चलाए जाएँ, तो ख़ुद फ़ैमिली का वजूद ही ख़तरे में पड़ जाएगा।

मगर जहाँ तक इन्फ़िरादी टेस्ट का मामला है, तो यहाँ हर एक का केस अलग-अलग बन जाता है। मिसाल के तौर पर कोई एक क़िस्म का खाना पसंद करता है और कोई दूसरे क़िस्म का खाना। कोई वेस्टर्न लिबास पहनता है और कोई ईस्टर्न लिबास। किसी को अदब से लगाव होता है और किसी को साइंस से। कोई कट्टर मज़हबी होता है और कोई मज़हब के मामले में लिबरल होता है। किसी को एक रंग का फ़र्नीचर पसंद होता है और किसी को दूसरे रंग का फ़र्नीचर, वग़ैरह।

इसी दोगाना उसूल पर तमाम ख़ानदानों का निज़ाम चल रहा है, ख़्वाह वह हिंदू ख़ानदान हो या मुस्लिम ख़ानदान, या और किसी कम्युनिटी से ताल्लुक़ रखने वाला ख़ानदान। हर एक के लिए फ़ितरत का यही उसूल है, और दुनिया में हर जगह यही उसूल कारफ़रमा है।

नवंबर 1991 में शोलापुर (महाराष्ट्र) में क़ौमी एकता के मौज़ू पर एक सेमिनार था। उसमें मुझे शरीक होने का इत्तिफ़ाक़ हुआ। इस मौक़े पर मुक़ामी एम.एल.ए. श्री तुलसी दास जाधव ने भी तक़रीर की। उन्होंने अपनी तक़रीर में कहा कि मैंने अपने घर में देखा है कि मेरे बाप नॉन-वेजिटेरियन थे। मेरी माँ कट्टर क़िस्म की वेजिटेरियन थीं। इसके बावजूद दोनों में कभी कोई इख़्तिलाफ़ नहीं हुआ। मैंने सालहा-साल तक देखा है कि मेरी माँ सुबह उठकर पहले मेरे बाप के लिए मीट बनातीं और उसको खाने की मेज़ पर रख देतीं। इसके बाद वह ग़ुस्लख़ाने में जाकर नहातीं और फिर अपने लिए दाल-सब्ज़ी वाला खाना बनातीं।

मेरी माँ इसी तरह आख़िर उम्र तक करती रहीं। खाने के मामले में दोनों के दरमियान इतना बड़ा फ़र्क़ था, मगर इस सवाल पर दोनों में कभी झगड़ा नहीं हुआ। दोनों ज़िंदगी भर इज़्ज़त और मुहब्बत के साथ मिलकर रहते रहे।

यही मामला हर फ़ैमिली का है। हर फ़ैमिली में कुछ चीज़ें साझा होती हैं और कुछ चीज़ें निजी । साझा हिस्से से मुराद वह चीज़ें हैं

जो सब से यकसां तौर पर ताल्लुक़ रखती हैं। मसलन ख़ानदान की इज़्ज़त, ख़ानदान का कारोबार, ख़ानदान की तरक़्क़ी, ख़ानदान का तहफ़्फ़ुज़। यह वह चीज़ें हैं जो ख़ानदान के हर फ़र्द का साझा कंसर्न होती हैं। इन चीज़ों में फ़ैमिली के एक फ़र्द और फ़ैमिली के दूसरे फ़र्द में कोई फ़र्क़ नहीं होता।

ख़ानदानी ज़िंदगी का दूसरा हिस्सा वह है जो निजी होता है। इसमें हर आदमी अपने-अपने ज़ौक़ पर चलता है। यह इन्फ़िरादी हिस्सा है—खाना-पीना, लिबास, तफ़रीहात, शख़्सी आदतें, वग़ैरह। ज़िंदगी का फ़ितरी उसूल यह है कि साझा चीज़ों में तमाम अफ़राद को एक नुक़्ता-ए-नज़र का पाबंद किया जाए। मगर इन्फ़िरादी चीज़ों में हर एक को आज़ादी दे दी जाए कि वह अपनी ज़ाती पसंद से जो रविश चाहे इख़्तियार करे। किसी भी समाज की कामयाबी का राज़ यह है कि उसमें एकता भी हो और अलग-अलग पहचान की गुंजाइश भी। यानी लोग मिल-जुलकर रहें, लेकिन अपनी-अपनी पहचान और फ़र्क़ को भी बरक़रार रख सकें। ख़ानदान ही जैसा मामला बड़े पैमाने पर क़ौम का भी है। यहाँ भी एक क़ौमी इंटरेस्ट है और दूसरा इन्फ़िरादी इंटरेस्ट। अगर इन दोनों की अलाहिदा-अलाहिदा रिआयत की जाए और उनमें कन्फ़्यूज़न न किया जाए, तो नेशन का मामला दुरुस्त तौर पर चलता रहेगा और अगर दोनों के फ़र्क़ को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए और ग़ैर-ज़रूरी तौर पर नज़रीयाती रोलर चला कर दोनों को एक करने की कोशिश की जाए, तो उसके बाद यह मसला सादा तौर पर एक समाजी मसला नहीं रहता, बल्कि वह ऐसे मैदान-ए-जंग का मसला बन जाता है जो कभी हल न हो सके।

ख़ानदान रिश्तेदारी की बुनियाद पर बनता है और क़ौम वतन की बुनियाद पर बनती है। क़ौमियत का सादा उसूल यह है कि एक ज़मीनी ख़ित्ते में जो लोग रहते हैं, वह सब एक क़ौम हैं। मसलन इंडिया में जो

हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी रहते हैं, वह सब के सब एक क़ौम हैं, ख़्वाह इस वाहिद क़ौम को हिंदुस्तानी कहा जाए या इसको इंडियन या भारतीय का नाम दिया जाए।

हिंदुस्तानी क़ौमियत के इस इंसानी मजमूए में एक चीज़ कॉमन है और इसी के साथ कुछ चीज़ें ऐसी हैं जो इन्फ़िरादी हैसियत रखती हैं। वह चीज़ें जिनका ताल्लुक़ इंडिया की इंटेग्रिटी या उसके मजमूई माद्दी इंटरेस्ट से हो, इस देश में रहने वाले हर आदमी का नज़रिया एक होगा। मसलन कश्मीर का मसला किसी मुसलमान के लिए मुस्लिम मसला नहीं होगा, बल्कि वह उसके लिए सिर्फ़ इंडियन मसला होगा। इसी तरह पंजाब का मसला किसी सिख के लिए सिख मसला नहीं होगा, बल्कि वह उसके लिए इंडियन मसला होगा। इसी तरह असम का मसला किसी क्रिश्चियन के लिए क्रिश्चियन मसला नहीं होगा, बल्कि वह उसके लिए इंडियन मसला होगा। इसी तरह वह तमाम मसाइल जिनसे मुल्क का मजमूई सियासी, मआशी, जुग़राफ़ी इंटरेस्ट वाबस्ता हो, उनमें किसी भी फ़र्द या कम्युनिटी की सोच अलाहिदा नहीं होगी।

मगर इस साझा नेशनल इंटरेस्ट के बाहर बहुत-सी चीज़ें हैं जिनका ताल्लुक़ इन्फ़िरादी ज़ौक़ से है। इन दूसरे पहलुओं में हर एक को अपने निजी दायरे में आज़ादी हासिल होगी। मसलन मज़हब, ख़ुराक, लिबास, ज़बान, रहन-सहन, शादी-ब्याह जैसे मामलात में हर एक को अपने महदूद दायरे में आज़ादी होगी कि वह अपनी इन्फ़िरादी पसंद के मुताबिक़ जो अंदाज़ चाहे, उसको इख़्तियार करे। यही तरीक़ा आज तमाम तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्कों में राइज है।

इस इन्फ़िरादी आज़ादी पर अगर कोई शर्त लगाई जा सकती है, तो वह सिर्फ़ यह कि किसी को अपनी आज़ादी इस हद तक नहीं बढ़ाना चाहिए कि वह दूसरे की आज़ादी में ख़लल-अंदाज़ी का सबब बन जाए। इस मामले में वही उसूल सादिक़ आता है जो एक अमेरिकी

शहरी ने रास्ते पर चलने वाले अपने एक हमवतन से उस वक़्त कहा था जब उसने अपनी आज़ादी का ग़लत इस्तेमाल करते हुए अपना हाथ उसकी नाक पर मार दिया था। उसने कहा कि यह सही है कि तुमको आज़ादी हासिल है, मगर तुम्हारी आज़ादी वहाँ ख़त्म हो जाती है जहाँ से मेरी नाक शुरू होती है:

Your freedom ends where my nose begins.

हक़ीक़त यह है कि हिमालय पहाड़ और बहर-ए-हिंद के दरमियान वाक़े एक ज़मीनी ख़ित्ता, जिसको हमारे दस्तूर ने "इंडिया" के तौर पर डिफ़ाइन किया है, उसमें बसने वाला हर आदमी इंडियन है। यह सब के सब लोग एक क़ौम हैं। सब के लिए ज़रूरी है कि वह एक ही क़ौमी सोच को अपनी पहचान बनाएँ और बाहम मिल-जुल कर ज़िंदगी गुज़ारें।

मगर इस वसीअ क़ौमी मजमूए के अंदर जो अफ़राद आबाद हैं, अपने निजी दायरे में उनका तर्ज़-ए-ज़िंदगी (mode of life) यकसां नहीं हो सकता और न किसी भी मुल्क में वह यकसां है। पहले दायरे के लिए फ़ितरत का तक़ाज़ा है कि सब का तर्ज़-ए-फ़िक्र एक हो। मगर ऐन इसी फ़ितरत का यह तक़ाज़ा भी है कि निजी दायरे में उनके दरमियान तनव्वो (विविधता) पाई जाए। एक माँ-बाप से पैदा होने वाले चार भाई ख़ानदान के साझा मफ़ाद के मामले में तो एक साझा तर्ज़-ए-फ़िक्र के हामिल होते हैं, मगर ज़ाती दायरे में चारों भाइयों का मिज़ाज और चारों भाइयों की पसंद अलग-अलग बन जाती है।

मालूम हुआ, वह चीज़ जिसको हम इंडियन नेशन कहते हैं, उसके दो दायरे हैं। एक दायरे में यकसानियत मतलूब है और दूसरे दायरे में तनव्वो। यकसानियत वाले दायरे में अलगाव बर्दाश्त नहीं किया जा सकता, मगर तनव्वो वाले दायरे का मामला इससे मुख़्तलिफ़ है। यहाँ कामयाब ज़िंदगी हासिल करने का राज़ सिर्फ़ एक है, और वह

है एक-दूसरे के दरमियान फ़र्क़ को टॉलरेट करना। पहले मामले में अगर "मन तू शुदम तू मन शुदी" यानी "तुम और मैं मिलकर एक हो जाएँ" का उसूल कारफ़रमा है, तो दूसरे मामले में "Let us agree to disagree" का उसूल।

हिंदुस्तानी क़ौमियत की कामयाब तामीर उसी वक़्त मुमकिन है जब इन दोनों हिस्सों के फ़र्क़ को समझते हुए हर एक की सही रिआयत की जाए। पहले दायरे में अलाहिदगी-पसंदी अगर इतनी बुरी चीज़ है जिसको क़ौमी ग़द्दारी कहा जाए, तो दूसरे दायरे के मामले में बरअक्स तौर पर उन्नीसवीं सदी के मशहूर अमेरिकी शायर, लेखक वॉल्ट व्हिटमैन का यह क़ौल बिलकुल सही मालूम होता है कि मैं इतना ज़्यादा वसीअ हूँ कि इन तमाम तज़ादात को अपने अंदर समा सकूँ:

I am large enough to contain all these contradictions.

(अल-रिसाला, फ़रवरी 1995)

मादर-ए-वतन कहना

एक साहब ने ई-मेल के ज़रिये यह सवाल किया कि इंडिया को मादर-ए-वतन कहना जायज़ है या नाजायज़। इस सवाल का जवाब यह है कि मादर-ए-वतन को जायज़ या नाजायज़ की इस्तिलाह में बयान करना इसको ग़ैर-ज़रूरी तौर पर शरीअती मसला बनाना है। यह इंतिहा-पसंदी (extremism) है कि हर चीज़ को जायज़ या नाजायज़ का मसला बनाया जाए। इस मिज़ाज को शरीअत में ग़ुलू कहा गया है, और क़ुरआन व सुन्नत में ग़ुलू की मुमानेअत की गई है। एक मरतबा सहाबी-ए-रसूल वाबिसा अल-असदी रसूलुल्लाह ﷺ

के पास आए। वह बहुत-से सवाल करना चाहते थे। रसूलुल्लाह ﷺ ने उनके सवालों का जवाब नहीं दिया, बल्कि यह कहा:

اسْتَفْتِ قَلْبَكَ

'अपने दिल से फ़तवा पूछो'

(मुस्नद अहमद: 18006)

इसका मतलब यह है कि हर बात को शरीअती मसला न बनाओ, बल्कि अपनी फ़ितरत की आवाज़ की पैरवी करो। जो लोग इंडिया को मादर-ए-वतन कहते हैं, वह इस मानी में नहीं कहते कि वह उसी जुग़राफ़िये के बत्न से पैदा होकर निकले हैं। हक़ीक़त यह है कि यह बात लफ़्ज़ के आम मानी में नहीं, बल्कि मजाज़ी मानी में कही जाती है। असल यह है कि मादर-ए-वतन से मुराद वही चीज़ है, जिसको दूसरे अल्फ़ाज़ में मसक़त-उर-रास, मक़ाम-ए-पैदाइश (homeland), बर्थ प्लेस (birthplace), वग़ैरह कहा जाता है। अगर बिलफ़र्ज़ कुछ लोग मादर-ए-वतन का लफ़्ज़ इस मानी में बोलें कि वह वतन के पेट से उसी तरह पैदा हुए हैं, जिस तरह कोई शख़्स माँ के पेट से पैदा होता है, तो यह उनका अपना मामला होगा, न कि आपका मामला।

आप मादर-ए-वतन का लफ़्ज़ अपने मफ़हूम में बोलिए। दूसरे लोगों को छोड़ दीजिए कि वह किस मानी में इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल करते हैं। यह भी ज़िंदगी की एक हिकमत है कि किसी बात का उसकी ज़रूरत से ज़्यादा मतलब नहीं निकालना चाहिए, बल्कि उसे उसी मानी में समझना चाहिए जिसमें लोग आम तौर पर उसे बोलते हैं।

मादर-ए-वतन (भारत माता) की इस्तिलाह उन्नीसवीं सदी के आख़िरी ज़माने में शुरू की गई। यह आज़ादी की तहरीक चलाने वाले लीडरों ने सियासी मक़सद के तहत इस्तेमाल किया था। इस इस्तिलाह की बुनियाद मज़हब पर नहीं है।

(अल-रिसाला, सितंबर 2016)

कम्यूनल हार्मनी

16 अप्रैल 1994 को भारतीय मजदूर संघ की दावत पर मैं नागपुर में था। यहाँ रेशम बाग (नागपुर) में उनका एक इजलास (सभा) था, जिसमें मेरी इनौगुरल स्पीच थी । मैंने अपनी तक़रीर में कहा कि आज़ादी के बाद हिंदुस्तान वह तरक़्क़ी-याफ़्ता हिंदुस्तान न बन सका जो इसको बनना चाहिए था। इसकी सबसे बड़ी वजह मुल्क में एकता न होना है। चुनाँचे मैंने अपना मिशन देश में कम्यूनल हार्मनी को बनाया है।

इस सिलसिले में जो बातें कहीं, उनमें से एक यह थी कि इसका सबब दोनों तरफ़ ग़ैर-ज़रूरी क़िस्म की ग़लतफ़हमियाँ पैदा होना है। दोनों फ़िर्क़ों में अगर मिलना-जुलना बढ़ जाए, तो अपने आप ग़लतफ़हमियाँ दूर हो जाएँगी और लोगों के दरमियान नॉर्मल ताल्लुक़ात क़ायम हो जाएँगे।

मैंने मुख़्तलिफ़ वाक़ियात बयान किए और वाक़ियाती मिसालों के ज़रिये बताया कि हर आदमी इंसान है। कोई आदमी अगर आपको अपना मुख़ालिफ़ दिखाई दे, तो यह उसकी सिर्फ़ आरज़ी हालत है। फिर मैंने कहा कि वंदे मातरम या इस तरह की दूसरी चीज़ों पर कुछ मुसलमान जो इतना ज़्यादा भड़कते हैं, उसकी वजह हक़ीक़त नहीं है, बल्कि ग़ैर-ज़रूरी हस्सासियत है। 1947 से पहले इस क़िस्म की हस्सासियत मुसलमानों में मौजूद नहीं थी। इसलिए ख़ुद मुसलमान इस क़िस्म की बातें कहते थे, मगर कोई रद्द-ए-अमल नहीं होता था। मैंने इक़बाल के चंद अशआर सुनाए। मिसाल के तौर पर—

"सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ताँ हमारा
हम बुलबुलें हैं इसकी, ये गुलिस्ताँ हमारा
मीर-ए-अरब को आई ठंडी हवा जहाँ से
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है
है राम के वजूद पे हिंदोस्ताँ को नाज़
अहल-ए-वतन समझते हैं इसको इमाम-ए-हिंद"

1947 से पहले कोई मुसलमान इक़बाल के इन अशआर पर भड़कता नहीं था। आज कोई हिंदू या मुसलमान ऐसी कोई बात कह दे, तो फ़ौरन अख़बारों में बयानात और मुरासले छपने लगते हैं। इसकी वजह यह है कि नाअह्ल लीडरों ने ग़ैर-ज़रूरी तौर पर मुसलमानों को इन बातों के बारे में हस्सास बना दिया है। (नागपुर का सफ़र, 1994)

वतन से मोहब्बत और क़ौमी एकता

मुस्लिम उलमा का एक जलसा था। एक साहब ने अपनी तक़रीर में कहा कि मुसलमानों के ऊपर यह ग़लत इल्ज़ाम लगाया जाता है कि वह मुल्क की मेन स्ट्रीम (मुख्य धारा) में नहीं हैं, वह बिला-शुब्हा हैं। मैंने कहा कि मेरे नज़दीक यह शिकायत बिलकुल बजा है। उन्होंने कहा कि वह कैसे। मैंने कहा कि मेन स्ट्रीम में अपने आपको शामिल करने का आग़ाज़ यहाँ से होता है कि आप यह मानें कि हिंदू और मुसलमान दोनों एक क़ौम हैं, जबकि यही बात अब तक हासिल नहीं हुई।

मैंने कहा कि हिंदोस्तान का हर आलिम जो पासपोर्ट बनवाता है, वह नेशनलिटी के ख़ाने में अपने आपको उसी तरह इंडियन लिखता है जिस तरह एक हिंदू लिखता है। इसका मतलब यह है कि हिंदू और

मुसलमानों दोनों की नेशनलिटी एक है और दोनों एक क़ौम हैं। मगर उलमा ने अभी तक इसका ऐलान नहीं किया। 1947 से पहले मुस्लिम लीग की तहरीक के ज़ेरे-असर तमाम मुसलमानों के ज़हन में यह भर दिया गया कि हिंदू और मुसलमान दो अलग-अलग क़ौमें हैं। शऊरी या ग़ैर-शऊरी तौर पर वही ज़हन अब तक चला जा रहा है।

दोनों को नेशनल मेन स्ट्रीम में लाने के लिए पहला काम यह है कि उलमा की तरफ़ से एक मुत्तफ़िक़ा एलान शाए हो कि क़ौमियत का ताल्लुक़ वतन से होता है। चूँकि हिंदुओं और मुसलमानों का वतन एक है, इसलिए दोनों एक क़ौम हैं। पासपोर्ट का ज़ाती फ़ायदा उठाने के लिए तमाम लोग इसके फ़ॉर्म पर अपनी नेशनलिटी इंडियन बता रहे हैं, मगर इसी बात का खुलेआम ऐलान करने के लिए तैयार नहीं। कैसा अजीब है यह तज़ाद जो लोगों की ज़िंदगी में पाया जाता है।

(डायरी, 26 नवंबर 1995)

गुड इंडियन

अंग्रेज़ी मैगज़ीन संडे के शुमारे 19-25 नवंबर 1995 में मिस्टर अरुण शौरी (पैदाइश 1941) का एक तफ़्सीली इंटरव्यू छपा। इसके इंटरव्यूअर मणि शंकर अय्यर थे। इस इंटरव्यू में मिस्टर अरुण शौरी ने जो बातें कहीं, उनमें से एक यह थी कि एक अच्छा मुसलमान (Good Muslim) का एक अच्छा इंडियन (Good Indian) होना बहुत मुश्किल है।

मैंने इस इंटरव्यू को पढ़ने के बाद मिस्टर अरुण शौरी को टेलीफ़ोन किया। मैंने कहा—यह बताइए कि मैं गुड मुस्लिम हूँ या नहीं। उन्होंने

कहा कि कौन कह सकता है कि आप गुड मुस्लिम नहीं हैं। मैंने कहा कि फिर सुन लीजिए कि मैं एक गुड मुस्लिम भी हूँ और गुड इंडियन भी हूँ। यह कहते हुए मेरी ज़बान से निकला—अगर मैं गुड इंडियन नहीं हूँ तो महात्मा गांधी भी गुड इंडियन नहीं थे।

इस वाक़िए के चंद रोज़ बाद डॉक्टर महेश चंद्र शर्मा (मेंबर पार्लियामेंट) मेरे दफ़्तर में मुलाक़ात के लिए आए। मैंने उनसे मज़कूरा गुफ़्तगू नक़्ल की। उन्होंने इसको सुनकर कहा—मौलाना साहब, आपके गुड इंडियन होने के लिए किसी अरुण शौरी के सर्टिफिकेट की ज़रूरत नहीं। आप ऐसे किसी सर्टिफिकेट के बग़ैर ही गुड इंडियन हैं।

(हिंद-पाक डायरी)

इसके बाद का वाक़िआ है। 23 नवंबर से 1 दिसंबर 1996 तक मैं पुणे के सफ़र में था। एक रात को फ़ज्र से पहले चार बजे सोकर उठा। वुज़ू करके दो रकअत नमाज़ लंबी क़िराअत के साथ पढ़ी। इसके बाद अपने कमरे में बैठा तो अचानक याद आया कि श्री गुरु गोलवलकर (1906-1973) और मिस्टर अरुण शौरी ने लिखा है कि एक गुड मुस्लिम कभी गुड इंडियन नहीं बन सकता।

यह सोचते हुए बे-इख़्तियार मेरी आँखों से आँसू निकल आए कि यह लोग इंसान को कितना कम जानते हैं। इनसे कहीं ज़्यादा इंसान से वाक़िफ़ उन्नीसवीं सदी का अमरीकी शायर वॉल्ट व्हिटमैन (Walt Whitman) था, जिसने कहा कि:

I am large enough to contain all these contradictions.

मैं यह कह रहा था और रो रहा था कि बाख़ुदा मैं एक गुड मुस्लिम हूँ और इसी के साथ मैं गुड इंडियन भी हूँ। यह मेरी शराफ़त-ए-इंसानी की तौहीन है कि यह कहा जाए कि मैं जिस मुल्क में पैदा हुआ, उसका मैं अच्छा शहरी नहीं हूँ। वतन की मोहब्बत एक ख़ालिस फ़ितरी जज़्बा

है, और जिस चीज़ की जड़ें ख़ुद फ़ितरत-ए-इंसानी में हों, उससे कोई इंसान कभी ख़ाली नहीं हो सकता।

मैंने अपने दिल में कहा कि अगर महात्मा गांधी पैदा हों और कहें कि मैं तुमको गुड इंडियन होने का सर्टिफिकेट देता हूँ, तो मैं ऐसा सर्टिफिकेट लेने से इंकार कर दूँगा। मैं कहूँगा कि क्या किसी बेटे को इसकी ज़रूरत है कि वह अपनी माँ का अच्छा बेटा बनने के लिए किसी और का सर्टिफिकेट हासिल करे। बाख़ुदा मैं किसी गुरु गोलवलकर या किसी गांधी के सर्टिफिकेट के बग़ैर ही एक गुड इंडियन हूँ। इंडिया की मोहब्बत में निकलने वाले मेरी तन्हाइयों के आँसू, जिनको देखने वाला कोई नहीं होता, वह ब-ज़ात-ए-ख़ुद इसके लिए काफ़ी हैं कि मैं अपने आप को पूरे मानी में एक गुड इंडियन समझूँ। (पुणे का सफ़र, नवंबर 1996)

वतन से सच्ची मुहब्बत

इस्लाम की तारीख़ में सुलह हुदैबिया, मौजूदा हालात पर राज़ी होने की एक मिसाल है। इख़्तिलाफ़ के मामलों में अमल के क़ाबिल तरीक़ा यही है कि आदमी मौजूदा हालात (status quo) को मान ले।

राहत अबरार साहब (अलीगढ़), खुर्शीद अहमद साहब (बंबई) और दूसरे कई मुसलमानों से बात करते हुए मैंने कहा कि मैंने हिंदुओं की कई मजलिसों और मीटिंगों में कई बार यह कहा कि कहा जाता है कि मुसलमान अच्छा इंडियन नहीं हो सकता—यह एक बे-अस्ल बात है। मैं पूरे मानी में एक मुसलमान हूँ, इसके बावजूद पूरे मानी में एक अच्छा इंडियन हूँ। फिर मैंने कहा कि अगर मैं अच्छा इंडियन नहीं हूँ तो महात्मा गांधी भी अच्छे इंडियन नहीं थे।

मैंने मज़ीद कहा कि मुझे अच्छा इंडियन बनने के लिए किसी गुरु गोलवलकर के सर्टिफिकेट की ज़रूरत नहीं। ऐसे किसी सर्टिफिकेट के बग़ैर मैं एक अच्छा इंडियन हूँ।

इन लोगों से मैंने मज़ीद यह कहा कि हिंदुओं के सामने यह कहने की जुर्रत मुझे इसलिए होती है कि मुझे इंडिया से सच्ची मोहब्बत है। मैं पूरे मानी में एक सच्चा देश-प्रेमी हूँ। मिसाल के तौर पर एक मुस्लिम मुल्क और इंडिया का किसी मैदान में आमना-सामना हो, तो मैं दिल से चाहूँगा कि मुस्लिम मुल्क के मुक़ाबले में इंडिया को जीत हासिल हो।

(डायरी, 14 नवंबर 1996)

अहसास-ए-वतनियत

डॉक्टर हमीदुल्लाह नदवी भोपाल यूनिवर्सिटी में अरबी के शोबे में उस्ताद हैं। वह दिल्ली आए। एक गुफ़्तगू के दौरान उन्होंने कहा कि मौजूदा ज़माने की नाअह्ल मुस्लिम क़ियादत ने एक ख़तरनाक काम यह किया है कि अपनी बे-हक़ीक़त बातों से उन्होंने हिंदुस्तान के मुसलमानों से अहसास-ए-वतनियत छीन लिया। यहाँ के मुसलमानों का हाल अब यह है कि वह सही मानी में हिंदुस्तान को अपना वतन नहीं समझते और वह यह भी जानते हैं कि दूसरा कोई मुल्क उन्हें क़बूल करने के लिए तैयार नहीं। इस तरह वह ज़ेहनी तौर पर ख़ुद अपने मुल्क में भी बे-जगह हो गए हैं और दूसरे मुल्कों में भी। इस ज़ेहनियत ने मुसलमानों को बे-पनाह नुक़सान पहुँचाया है।

(डायरी, 1 अक्तूबर 1997)

मौजूदा ज़माने में मुस्लिम रहनुमाओं ने नेशनलिज़्म और वतन

से मुहब्बत की इतनी ज़्यादा मुख़ालफ़त की कि अब वह मुसलमानों की बड़ी तादात की नफ़्सियात का हिस्सा बन गया है। इसके लिए एक दलील यह दी गई कि मौजूदा नेशनलिज़्म और हुब्ब-उल-वतनी से मुसलमानों की पहचान मिट जाएगी, वह एक मुस्तक़िल मिल्लत की हैसियत से अपना वजूद ख़त्म कर देंगे। मगर यह ख़तरा सिर्फ़ बे-शऊरी की पैदावार था। ज़्यादा अहम बात यह थी कि इसके नतीजे में मुसलमान अलैहदगी-पसंदी का शिकार हो गए और फिर उनके साथ अमलन यह पेश आया कि एक तरफ़ उनकी दुनियवी तरक़्क़ी रुक गई, तो दूसरी तरफ़ उनके दीन के ताल्लुक़ से आम इंसानों में बहुत-सी ग़लतफ़हमियाँ पैदा हो गईं। (नागपुर का सफ़र, 1994)

अमीर भारत, ग़रीब अमरीका

एक बार मदर टेरेसा (1901-1997) अमरीका में मदऊ की गईं। वह एक बड़े जलसे में शरीक हुईं, जिसमें सदर-ए-अमरीका भी मौजूद थे। इस मौक़े पर मदर टेरेसा से कुछ बोलने की फ़रमाइश की गई। अपनी बात शुरू करते हुए उन्होंने पहला जुमला यह कहा—मैं अमीर भारत से ग़रीब अमरीका में आई हूँ।

उनका मतलब यह था कि अमरीका अगरचे मादी एतबार से अमीर है, मगर रूहानी एतबार से वह मुफ़लिस है, जब कि भारत मादी एतबार से पीछे होने के बावजूद रूहानी एतबार से अमरीका से आगे है।

मदर टेरेसा अल्बानिया में पैदा हुईं। नौजवानी की उम्र में उन्होंने इंडिया की शहरीयत इख़्तियार कर ली। इसके बाद उन्होंने सचमुच इंडिया को अपना वतन बना लिया। मज़कूरा जुमला अहसास-ए-

वतनियत के तहत निकला हुआ जुमला है। बहुत से लोग जो इंडिया ही में पैदा हुए, इसके बावजूद वह मज़कूरा क़िस्म के अहसास-ए-वतनियत से महरूम हैं।

(डायरी, 2 अक्तूबर 1997)

यह इस्लाम नहीं

रिपोर्ट के मुताबिक़, अमरीका की फ़ौज में पंद्रह हज़ार मुसलमान हैं। यह लोग एक क़िस्म के नफ़्सियाती बुहरान में मुब्तला हैं। वह यह कि वह अमरीका की फ़ौज में शामिल होकर एक मुस्लिम मुल्क इराक़ के ख़िलाफ़ जंग करें या न करें। बताया गया है कि एक अमरीकी मुसलमान जिसका नाम अकबर था और कुवैत में अमरीकी फ़ौज के साथ था, उसने ज़ेहनी परेशानी के आलम में अमरीकी फ़ौजियों के एक कैंप पर ग्रेनेड से हमला कर दिया और छह अमरीकियों को मार डाला।

मेरे नज़दीक इस मामले में अमरीकी मुसलमानों के लिए जो चॉइस है, वह यह नहीं है कि वह अमरीकी फ़ौज में शामिल होकर मुस्लिम मुल्क के ख़िलाफ़ लड़ें या न लड़ें। हक़ीक़ी चॉइस सिर्फ़ यह है कि वह अमरीकी शहरीयत को क़बूल करें या शहरीयत को छोड़कर अमरीका से बाहर आ जाएँ। मेरे नज़दीक यह एक मुनाफ़िक़ाना (double standard) रविश है कि अमरीका की शहरीयत लेकर वहाँ की मादी सहूलतों से फ़ायदा उठाया जाए और जब अमरीका को कोई क़ौमी लड़ाई पेश आए, तो उस लड़ाई में अमरीका का साथ न दिया जाए।

आजकल उम्मा का जो तसव्वुर मुसलमानों में फैला हुआ है, मुझे

इस से इत्तिफ़ाक़ नहीं। मेरे नज़दीक मुसलमान अपने मज़हब के एतबार से आलमी उम्मत हैं, मगर वतन के एतबार से उनकी वफ़ादारियाँ उसी तरह अपने वतन के साथ होनी चाहिएँ, जिस तरह दूसरी क़ौमों के लोग अपने मज़हब के एतबार से अलग पहचान रखने के बावजूद वतनी मामलात में बक़िया अहल-ए-वतन के साथ होते हैं।

(डायरी, 26 मार्च 2003)

एक मिसाल

बी.बी.सी. लंदन पर हिंदी ख़बरों के प्रोग्राम के तहत हर रोज़ एक आइटम होता है जिसका मुस्तक़िल उन्वान यह है—बात एक सफ़र की।

इस आइटम के तहत 13 नवंबर 2003 को जो वाक़िआ बयान किया गया, वह यह था। समस्तीपुर (बिहार) के एक साहब, मुश्ताक़ ख़ान ने बताया कि वह अपनी बहन से मिलने के लिए कराची (पाकिस्तान) गए। यह सफ़र उन्होंने सितंबर 1991 में किया था। उन्होंने बताया कि वह वाघा बॉर्डर से ट्रेन के ज़रिये रवाना हुए। जब वह पाकिस्तानी सरहद (अटारी) पर पहुँचे, तो कुछ मुसाफ़िरों ने बताया कि मौजूदा पाकिस्तानी वज़ीर-ए-आज़म नवाज़ शरीफ़ ने ऐलान किया है कि हिंदुस्तान से आने वाले मुसाफ़िरों की कस्टम की चेकिंग नहीं की जाएगी। यह सुनकर मुश्ताक़ ख़ान साहब बहुत ख़ुश हुए।

मगर जब 11 सितंबर 1991 को उनकी ट्रेन लाहौर रेलवे स्टेशन पर पहुँची, तो मामला बिलकुल मुख़्तलिफ़ था। यहाँ कस्टम का सरकारी अमला इन लोगों के ऊपर टूट पड़ा और निहायत सख़्ती

के साथ उनकी जाँच करने लगा। मुश्ताक़ ख़ान साहब ने परेशान होकर कुछ कहा, तो कस्टम का एक आदमी उन पर बरस पड़ा। उसने तौहीन-आमेज़ अंदाज़ में कहा कि तुम तो शक्ल ही से हिंदुस्तानी नज़र आते हो। मुश्ताक़ ख़ान साहब ने इसका जवाब इन अल्फ़ाज़ में दिया कि हम हिंदुस्तानियों के चेहरे से नूर टपकता है, और तुम पाकिस्तानियों के चेहरे से फटकार टपकती है।

यह वाक़िआ हिंदुस्तान के आम मुसलमानों के जज़्बात को बताता है। आम मुसलमान जो हिंदुओं के साथ मिल-जुल कर रहते हैं, उनके दिलों में हिंदुस्तान के बारे में इसी क़िस्म के जज़्बात हैं। मगर मुसलमानों के नाम-वास्ते लीडर और मुसलमानों की नाम-वास्ते उर्दू अख़बारों का मामला इससे मुख़्तलिफ़ है। इन्हीं लोगों की वह मनफ़ी (negative) तहरीरें और मनफ़ी तक़रीरें वह मसला पैदा करती हैं, जिसकी बुनियाद पर कट्टर हिंदुओं को यह कहने का मौक़ा मिलता है कि हिंदुस्तान के मुसलमान मुहिब्ब-ए-वतन नहीं। (डायरी, 13 नवंबर 2003)

बरादरान-ए-वतन के साथ हुस्न-ए-सुलूक

दो साहिबान मुलाक़ात के लिए आए। यह मुसलमान थे, और ब्रिटानिया में रहते हैं। गुफ़्तगू के दौरान मैंने उनसे कहा कि मुसलमान को अपने वतन से मोहब्बत होनी चाहिए। ब्रिटानिया मुसलमानों को ब्रिटानिया से और अमरीकी मुसलमानों को अमरीका से। उन्होंने कहा कि अगर वहाँ के लोग हम से नफ़रत करें, तब भी हम उन से मोहब्बत करें। मैंने कहा कि हाँ। फिर मैंने उनको यह हदीस सुनाई:

لَا تَكُونُوا إِمَّعَةً، تَقُولُونَ إِنْ أَحْسَنَ النَّاسُ أَحْسَنَّا، وَإِنْ ظَلَمُوا ظَلَمْنَا، وَلَكِنْ وَطِّنُوا أَنْفُسَكُمْ، إِنْ أَحْسَنَ النَّاسُ أَنْ تُحْسِنُوا، وَإِنْ أَسَاءُوا فَلَا تَظْلِمُوا

यानी, रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया तुम लोग इम्मअह न बनो यानी यह कहने लगो कि लोग अच्छा सुलूक करेंगे तो हम भी अच्छा सुलूक करेंगे और लोग ज़ुल्म करेंगे तो हम भी उनके साथ ज़ुल्म करेंगे। बल्कि अपने आपको इस बात के लिए तैयार करो कि अगर लोग अच्छा सुलूक करें तब भी तुम अच्छा सुलूक करो और लोग बुरा सुलूक करें तो तुम उनके साथ ज़ुल्म न करो। (सुनन तिर्मिज़ी: 2007)

इससे मालूम हुआ कि इस्लामी अख़्लाक़ जैसे को तैसा का अख़्लाक़ नहीं। इस्लामी अख़्लाक़ एक तरफ़ा हुस्न-ए-सुलूक के उसूल पर मबनी है। (डायरी, 28 जुलाई 2011)

नेशनल कैरेक्टर

भारतीय विद्या भवन हिंदुस्तान का एक बहुत बड़ा तालीमी और इशाअती इदारा है। इसकी दावत पर नवंबर 1993 में मेरा एक सफ़र बंबई (मौजूदा मुंबई) के लिए हुआ। इस सफ़र का मक़सद यह था कि भारतीय विद्या भवन ने एक ख़ुसूसी जलसा आयोजित किया था, जिसमें मुझे शिरकत और ख़िताब की दावत दी गई थी। इस जलसे में, मैंने अपनी आधे घंटे की तक़रीर में दो बातों पर ख़ास तौर पर ज़ोर दिया। एक, हिंदू-मुस्लिम मेल-मिलाप और दूसरे, नेशनल कैरेक्टर।

हिंदू-मुस्लिम मेल-मिलाप की अहमियत को बताते हुए मैंने कहा

कि इसी इत्तेहाद की ख़ातिर महात्मा गांधी नोआखाली (बांग्लादेश) चले गए थे। वहाँ के क़ियाम के दौरान 5 दिसंबर 1946 को उन्होंने लिखा कि मेरा मौजूदा मिशन मेरी ज़िंदगी का बहुत मुश्किल और बहुत पेचीदा मिशन है। मैं इसकी ख़ातिर सब कुछ झेलने के लिए तैयार हूँ। यह करो या मरो का इम्तिहान है। इस वक़्त करने का मतलब यह है कि हिंदू और मुसलमान दोनों अमन के साथ रहना सीखें। वरना मैं इसी राह में मर जाऊँगा:

The present mission is the most complicated of all I have undertaken in my life… I mean to do or die here. “To do” means to restore amity between Hindus and Muslims; or I should perish in the attempt.

(The Collected Works of Mahatma Gandhi, Vol. 86, pp. 197-198)

नेशनल कैरेक्टर के सिलसिले में मैंने कहा कि नेशनल कैरेक्टर यह है कि मुल्क के इंटरेस्ट को सुप्रीम बनाया जाए। जहाँ मुल्क का इंटरेस्ट आ जाए वहाँ ज़ाती इंटरेस्ट को सेकेंडरी बना दिया जाए।

(बंबई का सफ़र, नवंबर 1993)

सच्ची देश-भक्ति

कुछ लोगों से मुलाक़ात हुई। गुफ़्तगू के दौरान देश-भक्ति का ज़िक्र हुआ। यह सवाल आया कि सच्चा देश-भक्त कौन है और उसकी पहचान क्या है।

मैंने पूछा, क्या आप जानते हैं कि माँ को भी अपने बेटे से मोहब्बत

होती है, और ताजिर को भी अपने ग्राहक से मोहब्बत होती है। उन्होंने कहा कि हाँ, यह तो सभी जानते हैं। फिर मैंने पूछा कि क्या आप किसी माँ को जानते हैं जो अपने बेटे की मोहब्बत में रोई हो। उन्होंने कहा कि ऐसी तो सभी माँए होती हैं। किसी माँ के बेटे पर कोई मुश्किल आए तो उसकी ख़बर जब माँ को होगी तो उसकी आँख से आँसू ज़रूर निकल आएँगे। मैंने कहा कि अच्छा यह बताइए कि क्या आप ऐसे ताजिरों को जानते हैं जो अपने ग्राहक के लिए रोते हों। उन्होंने जवाब दिया कि ऐसा कोई ताजिर तो हमको नहीं मालूम।

मैंने कहा कि अब मैं सवाल बदल कर एक और बात आपसे पूछता हूँ। आप सब लोग अलग-अलग पार्टियों से ताल्लुक़ रखते हैं। हर पार्टी के लीडर अपने बारे में देश-भक्त होने का दावा करते हैं। क्या आप में से कोई बता सकता है कि उसकी पार्टी के लीडरों में कौन-कौन लीडर हैं जो देश की हालत पर रोते हों। सब ने कहा कि ऐसा कोई लीडर हमको नहीं मालूम। देश-भक्ति का दावा तो सभी करते हैं मगर देश के लिए कोई भी नहीं रोता।

मैंने कहा कि अब मेरा फ़ैसला सुनिए। जो आदमी देश के दर्द में रोए वह सच्चा देश-भक्त है और जो आदमी सिर्फ़ देश के नाम पर तक़रीर करे वह बनावटी देश-भक्त।

(बंबई का सफ़र, नवंबर 1993)

क़ौमी शऊर और वतन की तामीर

देश की तरक़्क़ी के लिए बिला-शुब्हा एक प्रोग्राम दरकार है। मगर प्रोग्राम से पहले वह अफ़राद दरकार हैं जो इस प्रोग्राम को दिल की आमादगी के साथ इख़्तियार करें। मैंने कहा कि इस वक़्त हिंदुओं और

मुसलमानों में यह शऊर पैदा करने की ज़रूरत है कि इख़्तिलाफ़ात हर समाज में हमेशा मौजूद रहते हैं। हमें चाहिए कि इख़्तिलाफ़ और शिकायत के बावजूद मिल-जुल कर रहना सीखें। हमारे देश के मसले का हल वही है जो किसी ने कहा कि इख़्तिलाफ़ी बातों को पुर-अमन तौर पर तय कर लेना:

Peaceful resolution of conflicts.

इस मक़सद के लिए हमें intensive awareness programme जारी करना होगा।

(सेवाग्राम का सफ़र, मार्च 1993)

इत्तेहाद और कुर्बानी

भारत विकास परिषद की दावत पर 31 मार्च 1995 को भीलवाड़ा, राजस्थान का सफ़र हुआ। यह एक ग़ैर-सियासी इदारा है। यह लोग तामीरी कामों में दिलचस्पी रखते हैं। उनका मोटो है: राष्ट्र निर्माण - व्यक्ति निर्माण। यानी, फ़र्द की तामीर से मुल्क की तामीर होती है। उनके प्रोग्रामों के चार अजज़ा यह हैं: सेवा, संस्कार, सहयोग, संपर्क।

सूचना केंद्र (इन्फ़ॉर्मेशन सेंटर) में नौजवानों की एक मीटिंग हुई। तम्हीदी तक़रीरों के बाद मुझे मौक़ा दिया गया। मैंने अपने ख़िताब में कहा कि दो बातें अगर हमारे अंदर आ जाएँ तो मुल्क की तरक़्क़ी को कोई रोक नहीं सकता। आजकल यह हाल है कि लोग देश से सिर्फ़ लेना जानते हैं, देश को देना नहीं जानते। यह मिज़ाज न सिर्फ़ मुल्क के लिए नुक़सानदेह है, बल्कि तवील मुद्दत के एतबार से ख़ुद अफ़राद के लिए नुक़सान का बाइस है। हमें यह करना होगा कि ज़ाती मुफ़ाद के मुक़ाबले में देश के मुफ़ाद को ऊँचा रखें।

दूसरी चीज़ यह है कि इस मुल्क की तरक़्क़ी में सबसे बड़ी रुकावट हिंदू-मुस्लिम झगड़ा है। यह झगड़ा तमामतर ग़लतफ़हमी पर मबनी है। इमरजेंसी के ज़माने में जब हिंदुओं और मुसलमानों को गिरफ़्तार करके जेल में डाल दिया गया और वहाँ दोनों एक साथ रहे तो हर एक ने महसूस किया कि एक-दूसरे के बारे में उनके शक बेबुनियाद थे। हिंदुओं और मुसलमानों में अगर किसी तरह सिर्फ़ मेल-जोल बढ़ जाए तो तमाम ग़लतफ़हमियाँ अपने आप ख़त्म हो जाएँगी। (राजस्थान का सफ़र)

एक सीनियर सिटिज़न की ज़बानी

मेरी पैदाइश एक जनवरी 1925 को यू.पी. में हुई। मैं ब्रिटिश इंडिया में पैदा हुआ, और अब उसके एक सीनियर सिटिज़न की हैसियत से आज़ाद इंडिया में पहुँच गया हूँ। मेरी पैदाइश एक ऐसे घराने में हुई, जो फ्रीडम फाइटर की हैसियत रखता था। मेरे बड़े भाई इक़बाल अहमद ख़ाँ सुहैल (एम.ए., एल.एल.बी.) एडवोकेट (1884-1955) एक शायर थे। उन्होंने अपनी एक नज़्म में कहा था:

“ग़लत है यह कि फ़क़त हिंदुओं का लीडर था
कि था तमाम जहाँ भर का रहनुमा गांधी”

इक़बाल अहमद ख़ाँ सुहैल ने 1936 के यू.पी. के इलेक्शन में हिस्सा लिया था, और इलेक्शन जीत कर यू.पी. असेंबली के मेंबर बने थे। इसके बाद जब मैं बड़ा हुआ, तो मुझे स्वामी विवेकानंद (1863-1902) की किताब Letters of Vivekananda पढ़ने को मिली। इस किताब के Letter No. 271 में स्वामी विवेकानंद ने अपने एक दोस्त को एक ख़त, तारीख़ 10 जून 1898 में लिखा था। इस ख़त में स्वामी विवेकानंद

ने आज़ाद इंडिया के बारे में अपने विज़न को इन अल्फ़ाज़ में बयान किया था:

For our own motherland a junction of the two great systems, Hinduism and Islam—Vedanta brain and Islam body—is the only hope. I see in my mind's eye the future perfect India rising out of this chaos and strife, glorious and invincible, with Vedanta brain and Islam body.

(Letters of Swami Vivekananda, Letter No. 271, p. 427)

इन्हीं सुहानी यादों के साथ मेरे दिन गुज़रते रहे। मैं अपने दायरे में आज़ादी की सरगर्मियों में शरीक रहा। मिसाल के तौर पर मैंने आज़ादी से पहले मऊ (यू.पी.) जाकर जवाहरलाल नेहरू (1889-1964) की तक़रीर सुनी। मुझे याद है कि लोग ट्रेनों और बसों की छत पर बैठ कर मऊ पहुँचे थे। इसी तरह मैंने फूलपुर (आज़मगढ़) के एक जलसे में शरीक होकर सुभाष चंद्र बोस (1897-1945) की तक़रीर सुनी। जैसा कि मालूम है कि सुभाष चंद्र बोस ने आज़ाद हिंद फ़ौज 1942 में बनाई थी। उनका नारा यह था:

Give me blood, and I will give you freedom.

इसी तरह मैंने एक सोशलिस्ट इज्तिमा (gathering) में शरीक होकर जयप्रकाश नारायण (1902-1979) की तक़रीर सुनी। यह जलसा आज़मगढ़ में हुआ था। जैसा कि मालूम है जयप्रकाश नारायण बाद में लोकनायक के ख़िताब से मशहूर हुए। इस तरह मेरी नौजवानी के दिन गुज़र रहे थे। यहाँ तक कि 15 अगस्त 1947 का दिन आ गया।

15 अगस्त 1947 की रात को मैंने वह तारीखी तक़रीर तो नहीं सुनी, जिसमें उस वक़्त के वायसराय लॉर्ड माउंटबैटन (1900-1979) ने रात को 12 बजकर एक मिनट पर ऑल इंडिया रेडियो से ऐलान किया था:

Today, India is free

मैं वायसराय की तक़रीर को रेडियो पर तो नहीं सुन सका, लेकिन बहुत से दूसरे लोगों की तरह मैंने अगले दिन सुबह अख़बार में पढ़ा। 15 अगस्त 1947 को मैं आज़मगढ़ में था। मुझे याद है कि रात के वक़्त जब मैं अपनी क़ियामगाह से बाहर निकला, और शहर की सड़कों पर पहुँचा तो मेरे चारों तरफ़ ख़ुशी के दीए जल रहे थे। पूरा शहर रौशनी में डूबा हुआ था।

अब वह रौशनी बुझ चुकी है, लेकिन अब वक़्त आ गया है कि हम सब लोग मिलकर एक नए दौर के आग़ाज़ का दिया जलाएँ—वह है इंडिया की नई तामीर का दौर। वह दौर जिसका ख़्वाब स्वामी विवेकानंद ने देखा था। वह दौर जिसकी याद में महात्मा गांधी ने अपनी जान दे दी। वह दौर जिसका आख़िरी सफ़हा लिखने के लिए शायद इंडिया का मुअर्रिख़ इंतिज़ार कर रहा है।

मैं अब 90 प्लस हो चुका हूँ। लेकिन मेरी उम्मीदें अभी तक बाक़ी हैं। मेरा मामूल है कि मैं रोज़ाना सुबह अपने कमरे से निकल कर बाहर बैठ जाता हूँ, और सुबह के सूरज के निकलने का इंतिज़ार करता रहता हूँ। मुझे याद है कि एक मरतबा 15 अगस्त पर होने वाले एक प्रोग्राम में मैंने किसी शायर की ज़बान से सुना था:

‘बुर्जे-मिहन से निकला सूरज
रोशन अपना मुस्तक़बिल है’

मैं रोज़ाना तुलू-ए-सूरज (sunrise) का मंज़र इस उम्मीद से देखता हूँ कि शायद आज की सुबह वही सुबह हो, जिसके इश्तियाक़ में एक फ्रीडम फाइटर ने एक किताब लिखी थी, जिसका टाइटल था: रोशन मुस्तक़बिल। मैं हर दिन निकलने वाले सूरज का इस्तिक़बाल इन अल्फ़ाज़ में करता हूँ—वह सुबह कभी तो आएगी, वह सुबह कभी तो आएगी।

इंडिया ने पीसफुल स्ट्रगल (peaceful struggle) के ज़रिए अपनी तारीखी आज़ादी हासिल की थी। अब इंडिया की तामीर-ए-नौ का काम भी सिर्फ़ पीसफुल स्ट्रगल के ज़रिए अंजाम दिया जा सकता है। इंडिया ने पीसफुल स्ट्रगल के ज़रिए आज़ादी हासिल करके एक तारीख़ बनाई थी, अब दुबारा वक़्त आ गया है कि इंडिया की तामीर-ए-नौ का काम पीसफुल स्ट्रगल के ज़रिए अंजाम दिया जाए। इंडिया की ताक़त पहले भी अमन थी, आज भी अमन (peace) है, और आइंदा भी अमन ही उसकी ताक़त बनी रहेगी।

15 अगस्त 2020 को इंडिया ने अपना चौहत्तरवाँ यौम-ए-आज़ादी मनाया। अब आख़िरी वक़्त आ गया है कि हम आज़ाद इंडिया की हैसियत से अपना रुख़ मुतअय्यन करें। आज़ादी का दिन हमारे लिए एक नई राह तय करने वाला मौक़ा होना चाहिए। मौजूदा साल, यानी 2020 को हमें ट्रेंड-सेटर साल के तौर पर मनाना चाहिए। सोच-समझ कर हमें आख़िरी तौर पर यह तय करना चाहिए कि एक आज़ाद मुल्क की सूरत में हमारा निशाना क्या है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि इंडिया के बारे में उनका ख़्वाब यह है कि आज़ादी के बाद इंडिया स्पिरिचुअल सुपर पावर बन कर उभरे। इंडिया पोटेंशियल तौर पर बिला-शुब्हा स्पिरिचुअल सुपर पावर है। इस पोटेंशियल को एक्चुअल बनाने के लिए सिर्फ़ एक चीज़ की ज़रूरत है, और वह है जम्हूरी निज़ाम के तहत एक होकर कोशिश करना।

मैं 90 प्लस हूँ, इस लिहाज़ से मुझे ज़िंदगी का लंबा तजुर्बा हुआ है। मैं अपने तजुर्बे की रोशनी में यह कह सकता हूँ कि इंडिया के डेवलपमेंट के लिए सिर्फ़ एक ही वर्केबल मॉडल है। वह वही फ़ितरी मॉडल है, जिसको अमेरिकन मॉडल कहा जा सकता है। अमेरिकन मॉडल कंपटीशन पर बेस करता है, यानी ऐसा माहौल पैदा करना, जिसमें मेरिट

की बुनियाद पर किसी को तरक़्क़ी हासिल हो, न कि फ़ेवर (favour) की बुनियाद पर। तरक़्क़ी के लिए अस्ल चीज़ कंपटीशन है, न कि फ़ेवर। अमेरिका में हर मैदान में यह उसूल है कि compete or perish, यानी मुक़ाबला करो, या ख़त्म हो जाओ। आम ज़बान में इसको ‘करो या मरो’ (do or die) कहा जाता है।

फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़, इस दुनिया में कोई ग्रुप फ़ेवर (favour) के ज़रिए तरक़्क़ी नहीं कर सकता। वह सिर्फ़ मुक़ाबले (competition) में अपने आपको अहल साबित करके कामयाब हो सकता है। यह कंपटीशन है, जो इंसान को मैन (man) से उठाकर सुपरमैन (superman) बनाती है। क्योंकि ख़ालिक़ ने इस दुनिया को चैलेंज-रिस्पॉन्स (challenge-response) के उसूल पर बनाया है। फ़र्द की तरक़्क़ी या समाज की तरक़्क़ी का राज़ यह है कि फ़ितरत को आज़ादाना तौर पर काम करने का मौक़ा दिया जाए। इसके सिवा हर दूसरा उसूल इंसान का ख़ुद-साख़्ता उसूल होगा, जो कभी अमल में आने वाला नहीं।

यही मॉडल नेचुरल मॉडल है। कंपटीशन का मॉडल मोटिवेटिंग मॉडल (motivating model) है। इसके बरअक्स, नेहरू ने रशियन मॉडल को इख़्तियार किया, जिसको वह सोशलिस्ट मॉडल का नाम देते थे। मगर अमलन यह मॉडल डी-मोटिवेटिंग मॉडल (demotivating model) है। अब वक़्त आ गया है कि हम इस मॉडल को इख़्तियार करें, जो मोटिवेशन पर मबनी है, और इस मॉडल को मुकम्मल तौर पर छोड़ दें, जो अमलन डी-मोटिवेशन का मॉडल बन जाता है। अब आख़िरी वक़्त आ गया है कि हम इंडिया के डेवलपमेंट की री-प्लानिंग करें।

इंडिया में अमेरिका के साबिक़ सफ़ीर जॉन केनेथ गैल्ब्रेथ (John Kenneth Galbraith, 1908-2006) ने एक मरतबा अपने एक बयान में कहा था—India is a functioning anarchy.

मैं इस बयान को तनक़ीद के तौर पर नहीं लेता, बल्कि चैलेंज के तौर पर लेता हूँ, और यह दुआ करता हूँ कि इंडिया एक ideal democracy बने। (अल-रिसाला, अक्तूबर 2020)

सवाल व जवाब

सवाल: आपका एक ख़त 'माहनामा तज़कीर' के मई 2004 (नीज़ अल-रिसाला, मई 2004) के शुमारे में शाए हुआ है जो आपने अब्दुस्सलाम अकबानी साहब (नागपुर) को लिखा है। इसमें आपने उस तक़रीर का हवाला दिया है जो आपने दिल्ली में कॉन्स्टिट्यूशन क्लब के एक सेमिनार में की। इसमें आपने दो-क़ौमी नज़रिया को अल्लामा इक़बाल और जिन्ना साहब के ज़हन की पैदावार क़रार दिया और यह दलील दी कि हर पैग़म्बर ने अपने ज़माने के लोगों से ख़िताब करते हुए "ऐ मेरी क़ौम" कहा। यानी हाज़िरीन का अक़ीदा या मज़हब चाहे अलग-अलग हो, एक बस्ती या एक जुग़राफ़ियाई वहदत में रिहाइश-पज़ीर होने की वजह से वह एक क़ौम थे।

इस सिलसिले में बंदा कुछ अर्ज़ करने की जुरअत करता है। क़ुरआन तो जगह-जगह ईमान वालों को 'ऐ ईमान वालो' और कुफ़्र वालों को 'ऐ काफ़िरो' कह कर पुकारता है। वह कहता है कि क्या मोमिन और फ़ासिक बराबर हो सकते हैं। फिर क़ुरआन ख़ुद जवाब देता है—हरगिज़ नहीं (32:18)। वह कहता है—तुम जिसको पूजते हो उसको हमारा रसूल नहीं पूजता और जिसको वह पूजता है उसको तुम नहीं पूजते। हमारे रसूल और उसके साथियों का अपना दीन-ए-ख़ालिस, और तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन। (अल-काफ़िरून, 109:1-6)

क़ुरआन कहता है कि मुस्लिमीन और मुजरिमीन को क्या हम एक सतह पर रखें? तुम्हें क्या हो गया, कैसा ग़लत गुमान है तुम्हारा (68:35-36)। क़ुरआन में अल्लाह काफ़िरों को हिज़्ब-उश-शैतान कहता है और मोमिनों को हिज़्बुल्लाह कह कर उनको इनाम की बशारत देता है (58:19, 22)।

और सूरह तौबा में ऐलान करता है कि मुशरिकीन नजिस हैं और यह जो अपने आपको हरम-ए-काबा का मुतवल्ली समझते थे, उनको अगले साल से हरम-ए-काबा के क़रीब भी न आने देना (9:28), और जो ईमान नहीं लाते उनसे क़िताल करें और आप हैं कि काफ़िरों और मोमिनों को एक ही क़ौम साबित करने की बेकार कोशिश में हलकान हो रहे हैं। (मुहम्मद सिद्दीक, इस्लामाबाद)

जवाब:

1. क़ुरआन से जब यह साबित हो जाए कि पिछले नबियों ने अपने ग़ैर-मुस्लिम मुख़ातिबीन से कहा था कि “ऐ मेरी क़ौम” (11:89), तो यही उस्वा ख़ुद रसूलुल्लाह ﷺ का उस्वा क़रार पाएगा। क्योंकि क़ुरआन में रसूलुल्लाह ﷺ को ख़िताब करते हुए कहा गया है कि तुम भी वही करो जो पिछले अंबिया ने किया:

فَبِهُدٰىهُمُ اقْتَدِهْ (6:90)

“पस तुम भी उनके तरीक़े पर चलो।”

रिवायत से साबित होता है कि रसूलुल्लाह ﷺ ने अमलन भी यही किया। चुनाँचे ग़ज़वा-ए-उहुद के मौक़े पर आपके मुख़ालिफ़ीन ने आपके ऊपर पत्थर मारा जो आपके चेहरे पर लगा। इससे आपके चेहरे से ख़ून जारी हो गया। उस वक़्त आपने एक पिछले रसूल के उस्वा पर अमल किया। अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि. इस वाक़े का हाल बयान करते हुए फ़रमाते हैं:

كَأَنِّي أَنْظُرُ إِلَى رَسُولِ اللهِ ﷺ يَحْكِي نَبِيًّا مِنَ الْأَنْبِيَاءِ، ضَرَبَهُ قَوْمُهُ وَهُوَ يَمْسَحُ الدَّمَ عَنْ وَجْهِهِ وَيَقُولُ: رَبِّ اغْفِرْ لِقَوْمِي فَإِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ

यानी, “मैं रसूलुल्लाह ﷺ को देख रहा हूँ। वह नबियों में से एक नबी का हाल बयान कर रहे हैं, जिसको उसकी क़ौम ने मार कर ज़ख़्मी किया। वह अपने चेहरे से ख़ून पोंछ रहे थे और यह कह रहे थे—ऐ अल्लाह! तू मेरी क़ौम को माफ़ फ़रमा दे, क्योंकि वह जानते नहीं।”

इस मामले में जो कुछ मैंने कहा है वह क़ुरआन और हदीस के हुक्म पर मबनी है, जबकि आपने जो कुछ तहरीर फ़रमाया है वह तमामतर क़ियास और इस्तिनबात (inference)पर मबनी है और यह खुली हुई बात है कि क़ियास और इस्तिनबात के ज़रिए किसी क़ुरआन और हदीस के हुक्म की तर्दीद नहीं होती।

2. इस मामले में आप जैसे लोगों की अस्ल मुश्किल यह है कि आपने इंसानियत को मुस्तक़िल तौर पर दो गिरोहों में बाँट दिया है—मुस्लिम और काफ़िर। इस तक़सीम की बुनियाद पर आपके नज़दीक एक तरफ़ अबदी मानी में एक क़ौम मुस्लिम क़ौम बन गई है और दूसरी तरफ़ अबदी मानी में एक क़ौम ग़ैर-मुस्लिम क़ौम। यह तक़सीम सरासर ग़लत है। न मुसलमान किसी नस्ली ग्रुप का नाम है और न काफ़िर किसी नस्ली ग्रुप का नाम। दोनों ही का मदार इस पर है कि किसको मआरिफ़त-ए-ख़ुदावंदी मिली और किसको मआरिफ़त-ए-ख़ुदावंदी नहीं मिली। इसलिए मुसलसल ऐसा होगा कि मुसलमानों की बाद की नस्लें इस्लाम से दूर होती रहेंगी और ग़ैर-मुस्लिमों में से लोग सच्चाई की दरयाफ़्त करके अल्लाह के इताअतगुज़ार बंदे बनते रहेंगे।

इसलिए यह बिल्कुल फ़ितरी बात है कि क़ौमियत का मदार मज़हब पर न हो, बल्कि होमलैंड पर हो। क्योंकि मज़हब की तक़सीम बदलती रहती है, जबकि होमलैंड की तक़सीम आम तौर पर नहीं बदलती।

आपने अपने सवाल में जिन आयात का हवाला दिया है, उनके तफ़सीली मुताला के लिए मेरी तफ़्सीर “तज़कीर अल-क़ुरआन” और मेरी किताब “हिकमत-ए-इस्लाम” का चैप्टर “कुफ़्र और काफ़िर का मसला” मुलाहिज़ा फ़रमाइए।

नोट: यह मज़ामीन उर्दू और अंग्रेज़ी ज़बानों में किताबी शक्ल में शाए हो चुके हैं।

इनकार और झुठलाना

क़ुरआन में एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है:

وَالَّذِينَ كَفَرُوا وَكَذَّبُوا بِآيَاتِنَا أُولَئِكَ أَصْحَابُ الْجَحِيمِ (5:10)

“और जिन्होंने कुफ़्र किया और हमारी निशानियों को झुठलाया, ऐसे लोग दोज़ख़ वाले हैं।”

ऐसी आयतों में “कुफ़्र” और “तक़ज़ीब-ए-आयातुल्लाह” से क्या मुराद है? आम तफ़सीरों के मुताबिक़, यहाँ “कुफ़्र” का मतलब नुबुव्वत का इंकार करना है। लेकिन फिर सवाल पैदा होता है कि “तक़ज़ीब-ए-आयातुल्लाह” का क्या मतलब है? इस पर ग़ौर करने से मालूम होता है कि दोनों में एक ही हक़ीक़त को दो पहलुओं से बयान किया गया है। कुफ़्र से मुराद नुबूवत का अक़ीदे के तौर पर इनकार करना है। और तक़ज़ीब-ए-आयात से मुराद है इस बात पर दी गई

दलीलों (सबूतों) को अपने बनाए गए बहानों और दलीलों के ज़रिए मानने से इनकार कर देना।

मिसाल के तौर पर यह मानना कि अंबिया हमेशा बनी इस्राईल की नस्ल में पैदा हुए। इसलिए बनी इस्माईल में नबी का पैदा होना क़ाबिल-ए-क़बूल बात नहीं है। रसूलुल्लाह ﷺ का ज़ुहूर हुआ तो यहूद ने आपको नबी-ए-बरहक़ मानने से इंकार कर दिया।

उनका कहना था कि अल्लाह की तरफ़ से जो नबी आए, वह सब के सब बनी इस्राईल में आए। पैग़म्बर-ए-अरबी इसके बरअक्स बनी इस्माईल में पैदा हुए हैं, इसलिए वह नबी-ए-बरहक़ के तौर पर क़ाबिल-ए-क़बूल नहीं हो सकते।

इसी तरह यहूद के रवायती अक़ीदे के मुताबिक़ हिदायत एक नस्ली हक़ीक़त थी, जबकि रसूलुल्लाह ﷺ ने हिदायत को पैदाइशी चीज़ के बजाय ज़ाती चॉइस की चीज़ बताया। इस बुनियाद पर वह एक साथ दो गुनाहों के मुजरिम क़रार पाए—नुबुव्वत का इंकार और दलील को न मानना। मुसलमानों ने भी इससे मिलती-जुलती ग़लती की। उन्होंने सच्चाई को अपने-अपने मसलक और फ़िरक़े तक महदूद कर दिया और इस मामले में किसी भी दलील को मानने से इनकार कर दिया। (अल-रिसाला, मार्च 2020)

मिठास का इज़ाफ़ा

टाइम्स ऑफ इंडिया के ज़मीमा The Neighborhood Star (18–24 मार्च 1989, p.6) में एक सबक़-आमोज़ वाक़िया शाए हुआ।

ईरान के पारसी जब पहली बार हिंदुस्तान में आए तो वह हिंदुस्तान के मग़रिबी साहिल पर उतरे। उस वक़्त यादव राणा गुजरात का राजा

था। पारसी जमात का पेशवा राजा से मिला और उससे दरख़्वास्त की कि वह इन लोगों को अपनी रियासत में ठहरने की इजाज़त दे।

राजा ने जवाब में दूध से भरा हुआ एक ग्लास पारसी पेशवा के हाथ पर रख दिया। इसका मतलब यह था कि हमारी रियासत पहले ही से आदमियों से भरी हुई है, इसमें और लोगों के लिए जगह नहीं।

पारसी पेशवा ने लफ़्ज़ों में कोई जवाब नहीं दिया। उसने सिर्फ़ यह किया कि एक चम्मच शक्कर लेकर दूध में मिला दी और ग्लास राजा की तरफ़ लौटा दिया।

यह इशारती ज़बान में इस बात का इज़हार था कि हम लोग आपके दूध पर क़ब्ज़ा करने के बजाय उसको मीठा बनाएँगे। हम आपकी रियासत की ज़िंदगी में मिठास का इज़ाफ़ा करेंगे।

इसके बाद राजा ने उन्हें गुजरात में क़याम की इजाज़त दे दी।

इस वाक़िये पर अब एक हज़ार साल से ज़्यादा गुज़र चुका है। तारीख़ बताती है कि पारसी रहनुमा ने जो बात कही थी, पारसी क़ौम ने उसको पूरा कर दिखाया। पारसी इस मुल्क में मुतालबा, एहतिजाज और एजीटेशन का झंडा लेकर खड़े नहीं हुए, बल्कि उन्होंने अपनी ख़ामोश मेहनत से इस मुल्क की तरक़्क़ी में इज़ाफ़ा किया।

उन्होंने तालीम, तिजारत और इंडस्ट्री में तरक़्क़ी की। उन्होंने मुल्क की दौलत और मुल्क की तरक़्क़ी को बढ़ाया। इस देश में बहुत से लोग केवल लेने वाले हैं, लेकिन पारसियों ने अपने काम से देने वालों में अपनी जगह बनाई।

यही ज़िंदगी का राज़ है। इस दुनिया में देने वाला पाता है। यहाँ उस आदमी को बा-इज़्ज़त जगह मिलती है जो लोगों के “दूध” में अपनी तरफ़ से “मिठास” का इज़ाफ़ा करे। इसके बरअक्स, जिन लोगों के पास दूसरों को देने के लिए सिर्फ़ कड़वाहट हो, उन्हें भी इस दुनिया में वही चीज़ मिलती है जो उन्होंने दूसरों को दी है। (अल-रिसाला, जनवरी 1989)

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

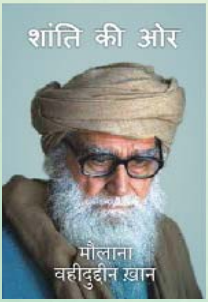

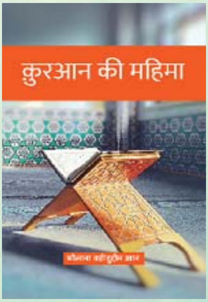

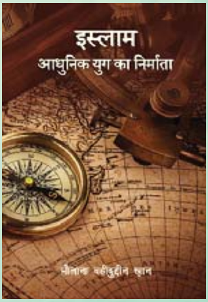

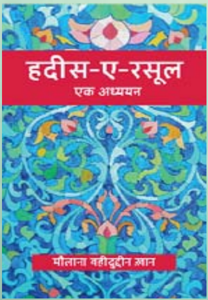

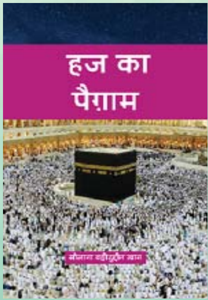

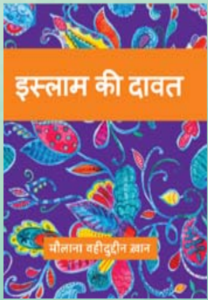

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

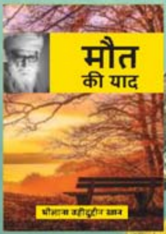

₹40/-

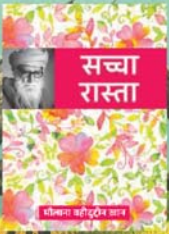

₹20/-

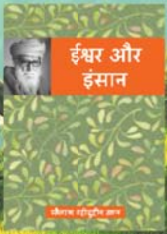

₹40/-

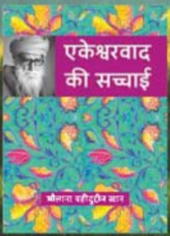

₹30/-

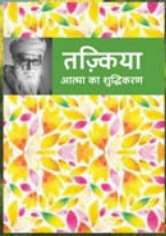

₹45/-

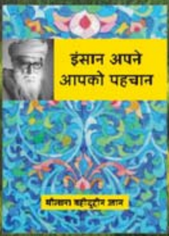

₹20/-

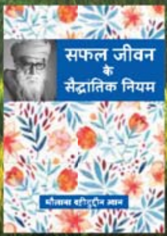

₹40/-